वर्ष 7, अंक (अप्रैल -जून 2021)

वेबसाइट:www.aifrte.in

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच

तालीम की लड़ाई

('केजी से पीजी' तक मुफ़्त और समतामूलक शिक्षा का समर्थक और शिक्षा में हर प्रकार के व्यापार का प्रतिरोधी मुखपत्र)

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच का त्रैमासिक प्रकाशन

संपादकीय

नजरिया:

अमरीका से चिट्ठी ---------- 04

समसामियिकी:

कोविड काल में ऑनलाइन ---------- 06

उच्च शिक्षा में निजीकरण ---------- 13

दुनिया की खिडकी से :

आइसलैंड की शिक्षा ---------- 16

कनाडा की औपनिवेशिक ---------- 19

संगठन की रपटें/प्रेस विज्ञप्ति :

9 अप्रैल के सम्मलेन की रपट व पर्चा 23

9 अप्रैल के सम्मलेन का प्रस्ताव 32

विद्यार्थी-युवाओं का चार्टर 33

प्रोग्राम ऑफ एक्शन 35

राशिनी 2020: 50 प्रमुख आपत्तियां 38

छात्र एकता मंच का प्रेस नोट 42

स्टेट प्लेटफार्म ---------- 43

श्रद्धांजलि:

कॉमरेड शिवराम 47

प्रो दविंदर 47

प्रो. लाल बहादुर वर्मा 48

फादर स्टेन स्वामी 49

रमेश उपाध्याय 49

सूरजपाल चौहान 50

कविता: हम उन्हें अच्छे नहीं लगते 52

कार्यकारी संपादक

जी शंकर

संपादक मंडल

चतुरानन ओझा (उ.प्रदेश)

फ़िरोज़ (दिल्ली)

लाल्टू (हैदराबाद)

राजेश आज़ाद (दिल्ली)

कवर डिज़ाइन

ओमप्रकाश कुमार (मुज़फ्फ़रपुर)

संपादकीय संपर्क

ईमेल: taleemkiladai@gmail.com

सहयोग राशि : 35/-

संपादकीय

कोरोना का ख़ंजर दुनिया के सीने में धँसा हुआ है. सभी सुर-ताल चुप हैं. ग़म और तन्हाई का आलम चारों ओर पसरा हुआ है। इस दरकती धरती पर सभी आज़ाद हैं. दरारों में साँप छिपे बैठे हैं और भेड़िये अपने बच्चों के लिए माँद बना रहे हैं। अख़बारों से कंकालों की चीख़ निकल रही है. अराजकताओं के बीच अराजकता ख़ुद चुप होकर बैठ जाना चाहती है. गंगा में लाशें तैर रही हैं और मौत का सिलसिला जारी है. कितने लोग साथ छोड़ चुके हैं. जो कल तक साथ थे, वे आज नहीं हैं. पिछले दो-तीन महीनों में कोरोना महामारी का जो ताँडव चला, वह देश के इतिहास की सबसे बड़ी त्रासदियों में से एक है. इस महामारी को एक त्रासदी बनाने में सरकार की घोर मानवद्रोही भूमिका भुलाये नहीं भूलती. मौत की इस विभीषिका ने हमसे हमारे प्रियजन, हमारे दोस्त छीन लिए और पूरा देश शोक में डूब गया. लोगों ने जब सरकार के सामने अपने प्रियजनों की हिफ़ाज़त की गुहार लगाई और सरकार को उसकी ज़िम्मेदारी और जवाबदेही की याद दिलाई तो उनकी मदद करने के बदले सरकार ने कहा कि ऐसी कोई भी माँग सरकार-विरोधी गतिविधि मानी जाएगी और ऐसी बात करने वालों पर कार्रवाई की जाएगी. अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच के कई साथियों ने भी अपने अज़ीज़ खोए.

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच सभी दिवंगत साथियों और उनके परिजनों के प्रति गहरे दुःख का इज़हार करता है. भारत की लचर स्वास्थ्य व्यवस्था की रोशनी में दुनिया के पैमाने पर वैक्सीन संकट हमें यही सबक देता है कि साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा नियंत्रित ग्लोबल सप्लाई चेन हमेशा गरीब मुल्कों को उनकी बुनियादी इंसानी ज़रूरतों से वंचित रखेगी और उनके लिये भीषण आपदा और संकट लेकर ही आती रहेगी. मुनाफ़ाखोर कंपनियों के रहमों-करम पर टिके शोध कार्य और विज्ञान को जब तक मुनाफे की जंजीरों से आज़ादी नहीं मिलेगी, तब तक विज्ञान समाज की ज़रूरतों को पूरा करने में अक्षम और निष्प्रभावी सिद्ध होता रहेगा, व उसका फायदा सिर्फ धन्नासेठों की तिजोरी भरने के लिये होता रहेगा. पाँच ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था बन रहे देश में ऑक्सीजन, दवा, बेड की कमी से दम तोड़ते लोगों की रफ़्तार इस वक्त दुनिया के देशों से कहीं ज़्यादा है. इन मौतों को मौत कहना बेमानी होगा. ये जानें बचायी जा सकती थीं, लेकिन इस मुनाफ़ाखोर, रक्तपिपासु और नरभक्षी व्यवस्था की नीतियों की वजह से ये हत्याएँ कही जाएँगी. हमें जानना चाहिए कि जीडीपी का सिर्फ 1.8 फीसदी ही स्वास्थ्य के क्षेत्र में खर्च किया जाता है. देश में तकरीबन 12,500 मरीजों पर सिर्फ एक डॉक्टर उपलब्ध है. स्वास्थ्य सेवाओं का निजीकरण करके काफी पहले से ही आम लोगों से स्वास्थ्य का अधिकार छीना जा चुका है. देश की समूची व्यवस्था का राष्ट्रीयकरण करके, उसे सरकारी नियंत्रण में लाकर सभी के लिये मुफ्त और एक–समान दवा-इलाज का इंतज़ाम कर इन हालात की भयावहता को कम किया जा सकता था. स्वास्थ्य के अधिकार पर हमला हमारे जीने के अधिकार पर हमला है. आदमखोर पूंजीवादी व्यवस्था हमें ये अधिकार नहीं दे सकती. संकट की इस घड़ी ने एक बार फिर मानवकेंद्रित गैर-बराबरी मुक्त व्यवस्था की ज़रूरत को महसूस कराया है.

कोरोना काल में जब देश में आम लोगों की कमाई घट रही है, तब उन्हें राहत देने के बजाय सरकार महंगे पेट्रोल-डीज़ल का बोझ डाल रही है. सरकार आयकर और कॉरपोरेट टैक्स से ज़्यादा कमाई तो पेट्रोल-डीज़ल से कर रही है. सात साल में इंधन पर टैक्स से कमाई दो-गुना ज़्यादा बढ़ी है.

सवा साल पहले हुए दिल्ली दंगे के मामले में साल भर बंद छात्र आसिफ इकबाल, नताशा नरवाल और देवांगना कालिता को ज़मानत पर रिहा करते हुए दिल्ली हाईकोर्ट ने कहा कि ऐसा लगता है कि अपने खिलाफ उठी आवाज़ को दबाने के दुरुत्साह में शासन ने संविधान-प्रदत्त विरोध के अधिकार और आतंकी गतिविधियों के बीच की रेखा को मिटा दिया. अगर सरकार के इस माइंडसेट पर फ़ौरन लगाम न लगी तो यह देश के लिये बुरा दिन होगा. भारत जैसी जन-विरोधी व्यवस्था में भी जब कोई संस्था या सरकार अपने खिलाफ विरोध दबाने के सिलसिले में सभी हदें पार करती हैं तो कोई-न-कोई संस्था उसे रास्ता दिखाती है. मुमकिन है कि सत्ता के नशे में उसे वह राह न दिखे लेकिन इससे बना जनमत का दबाव उसे जनता की नज़रों से गिरा कर सत्ता से हटा देता है. आज राज्य की दंड नीति अभियुक्तों को सुनवाई के कबल ही जेल में ठूंसने की बन चुकी है. सत्ता के नशे में भले ही इसे अनसुना कर दिया जाए, लेकिन आहत जनाक्रोश को रोकने की ताकत किसी भी व्यवस्था में नहीं होती. इन तीनों की रिहाई एक सुखद खबर है, परन्तु हमें याद रखना होगा कि

FORM IV

1. Place of publication: 11-4-169/1/A, Flat no 306, Pleasant Apartments, Red Hills, Lakadikapool, Khairatabad, Hyderabad 500004
2. Periodicity of its publication: Quarterly
3. Printer's Name: Donkada Ramesh Patnaik
   Nationality: Indian
   Address: 11-4-169/1/A, Flat no 306, Pleasant Apartments, Red Hills, Lakadikapool, Khairatabad, Hyderabad 500004
4. Publisher's Name: Donkada Ramesh Patnaik
   Nationality: Indian
   Address: 11-4-169/1/A, Flat no 306, Pleasant Apartments, Red Hills, Lakadikapool, Khairatabad, Hyderabad 500004
5. Editor's Name: Donkada Ramesh Patnaik
   Nationality: Indian
   Address: 11-4-169/1/A, Flat no 306, Pleasant Apartments, Red Hills, Lakadikapool, Khairatabad, Hyderabad 500004
6. Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital: None

I, Donkada Ramesh Patnaik, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Date: Donkada Ramesh Patnaik

अभी भी कई राजनितिक कार्यकर्ता, मानवाधिकार और सामाजिक कार्यकर्त्ता अलग-अलग जेलों में निराधार आरोपों के तहत कैद हैं. हम उनकी त्वरित रिहाई की मांग करते हैं.

कोरोना महामारी ने मानव इतिहास में 200 से अधिक देशों में लगभग 1.6 बिलियन शिक्षार्थियों को प्रभावित करते हुए शिक्षा व्यवस्थाओं में सबसे बड़ी रुकावट डाली है. दुनिया की छात्र आबादी के 94 फीसदी से अधिक पर स्कूलों, संस्थानों और अन्य शिक्षण स्थलों के बंद होने से जबरदस्त असर पड़ा है. इसकी वजह से हमारे जीवन के सभी पहलुओं में दूरगामी तबदीली आई है. स्कूलों और अन्य शैक्षिक संस्थानों को पाबंदियों में ढील और कई नए मानकों के साथ फिर से खोलना एक बहुत बड़ी चुनौती है. भारत में भी हालात जुदा नहीं हैं. कोरोना काल में ही आपदा में मौका तलाशते हुए ऑनलाइन शिक्षा के नाम पर व्यापक मेहनतकश जनता के बेटे-बेटियों को अघोषित तौर पर शिक्षा व्यवस्था से बाहर कर दिया गया है.

पिछले अप्रैल का महीना भारत में शिक्षा के अधिकार के लिये चल रहे संघर्ष के इतिहास में अहम था. 9 अप्रैल, 2021 को राजधानी दिल्ली में देश भर के छात्र, अध्यापक और तालीम से जुड़े विभिन्न युवा-छात्र संगठनों ने अभाशिअमं द्वारा आयोजित राष्ट्रीय सम्मलेन में भाग लिया. सम्मलेन ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को ख़ारिज करते हुए कहा कि इस नीति के लागू होने से शिक्षा व्यवस्था का भेदभावपूर्ण और गैर-बराबर किरदार गहराएगा जिससे भारत के नौजवानों का भविष्य गर्त में चला जाएगा. यह भारत को एक राष्ट्र और समाज के रूप में उदारवादी पूंजीवाद का गुलाम बना देगी. इसलिए नई शिक्षा नीति 2020 को ख़ारिज करते हुए सम्मलेन ने मांग की कि केजी से पीजी तक सभी के लिये समान गुणवत्ता की मुफ्त शिक्षा हो जिसमें सामाजिक न्याय के संवैधानिक सिद्धांत लागू हों. इसके अलावे, यूजीसी के ब्लेंडेड लर्निंग पर अभाशिअमं की प्रतिक्रिया भी गौरतलब है. इसे हम अगले अंक में शामिल करेंगे।

शिक्षा की मौजूदा नीति और कई नए-नए प्रस्ताव हरेक स्तर की शिक्षा पर नकारात्मक असर डालेंगे. यह समय देश के छात्रों-युवाओं, श्रमिकों और बौद्धिक तबके के लिये शिक्षा के अधिकार को हासिल करने हेतु नए सिरे से जनांदोलन खड़ा करने के लिये कमर कस लेने का है. अभाशिअमं को इसके लिये जबरदस्त पहल करने की फौरी ज़रूरत को समझते हुए रणनीति तय करनी होगी. 'तालीम की लड़ाई' के जरिये हम भारत में पड़ोसी स्कूल पर आधारित समान स्कूल प्रणाली की स्थापना के लिये समीक्षात्मक चिंतन और रचनात्मक कर्म हेतु जागरूक नागरिकता के निर्माण की दिशा में अग्रसर हैं.

'तालीम की लड़ाई' में विभिन्न मोर्चों पर काम करनेवाले लोगों के विचार उनके आलेखों के जरिये आते हैं. उनमें वैचारिक विविधता होती है और उनकी हर बात से संपादक मंडल की या अभाशिअमं की सहमति ज़रूरी नहीं है.

*****

अमेरिका से चिट्ठी : स्कूली शिक्षा उलट गई

-प्रो. क्रिस्टोफर एम क्लार्क

कोविड-19 महामारी के कारण लगातार हो रहे नुकसान को कम करने के लिये किये गए उपायों की वजह से अमेरिका और दुनिया भर में स्कूली शिक्षा उलट गयी है. संयुक्त राज्य अमेरिका में पन्द्रह महीने पहले मार्च 2020 में पब्लिक स्कूल बंद होने शुरु हुए. हाल का अतीत बेमिसाल वैज्ञानिक विकासों, राजनैतिक लड़ाइयों को पंगु बनाने, स्वास्थ्य और जीवन की दुखद क्षति और वीरता और उदारता की प्रेरक कहानियों का समय रहा है. अब जून 2021 में, अमेरिकी शिक्षक व्यक्तिगत रूप से स्कूली शिक्षा के परिचित पैटर्न पर लौटने के लिये सावधानीपूर्वक आशावादी योजनाएँ तैयार कर रहे हैं. सामान्य हालात में तत्काल वापसी मुमकिन नहीं है, लेकिन इसके आसपास अधिक-से-अधिक होने की उम्मीद की जा सकती है.

मैं महामारी के दौरान अमेरिकी स्कूली शिक्षा प्रतिभागी-पर्यवेक्षक रहा हूँ और मैंने जो देखा और सुना है, उससे तीन ऐहतियाती सबक सीखे हैं. संक्षेप में ये सबक हैं:

1. स्कूलों की बंदी और दूर से सीखने-सिखाने के सिलसिले के लिये तकरीबन कोई भी तैयार नहीं था. सभी शिक्षकों को उनके शिक्षण के प्रथम वर्ष की थकाऊ और निराशाजनक, डूबने या पार लगने की हालत में छोड़ दिया गया था. हाईब्रिड या मिश्रित शिक्षण में शिक्षक कुछ छात्रों को व्यक्तिगत रूप से आमने-सामने पढ़ाने की कोशिश करते हैं, साथ ही अन्य छात्रों को दूर से पढ़ाते हैं. ऐसी कक्षा का प्रबंधन शिक्षकों के लिये बहुत ही नाजुक और जटिल है. हाईब्रिड शिक्षण दूरस्थ सेटिंग्स में छात्रों को नुकसान पहुँचाता है. स्कूल में मास्क पहनना और सोशल डिस्टेंसिंग जैसे उपाय स्पष्ट बातचीत को कमजोर करते हैं.
2. कुछ छात्र ऑनलाइन स्कूली शिक्षा में फले-फूले, लेकिन बहुत-से छात्र इसमें असफल रहे, खासकर गरीब. ऑनलाइन स्कूली शिक्षा ने शर्मीले और अंतर्मुखी छात्रों और उन लोगों की मदद की जिन्हें आमने-सामने वाली स्कूली शिक्षा में धौंसियाया, सताया, डराया गया था. छात्रों के समूह आधारित कला और खेल गंभीर रूप से छूट गए थे. इन गतिविधियों को अक्सर पाठ्येतर और शिक्षा के मिशन के लिये अहम नहीं माना जाता, लेकिन वाकई ये बच्चों के विकास, मनोबल और दृढ़ता के लिये बहुत ही अहमियत रखते हैं.
3. शिक्षकों को पढ़ाने के अलावा बच्चों की देखभाल करने और उनके लिये चीजों को आसान बनाने के लिये अधिक महत्व दिया जाता है. कहने का मतलब यह है कि समाज और अर्थव्यवस्था शिक्षकों पर उनकी पहरेदारी वाली सेवाओं के लिये निर्भर करती है, न कि उनकी शिक्षाशास्त्रीय हैसियत के लिये. महामारी के दौरान शिक्षण के भीषण, खतरनाक और अनिश्चित कार्य ने शिक्षकों की गंभीर कमी पैदा की है.

मैं इन सबको हल्के में लेता हूँ, क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका में शिक्षा की स्थिति तेजी और गतिशील रूप से बदल रही है. हर हफ़्ता नई योजनाओं और प्रतिबंधों, आशावादी पूर्वानुमानों या कोविड वैरिएंट की चिंताजनक बात और टीकाकरण दरों में उतार-चढ़ाव की खबरें लाता है. और मुझे यकीन है कि मैंने जो

सबक सीखे हैं, वे लाखों अन्य शिक्षकों के लिये उपलब्ध शक्तिशाली पाठों का एक छोटा सा अंश हैं. गैर-यकीनी, डर और गम के इस वक्त में शराफत एक अहम खूबी है.

एक सुझाव जो इस समय शिक्षकों के लिये मददगार हो सकता है वह है धीमे चलना, अपने लिये और अपने छात्रों के लिये. लंबे समय से अप्रासंगिक हो चुके मनमाने ढंग से सीखने और उपलब्धि के लक्ष्यों को हासिल करने के लिये जल्दबाजी करना अच्छा नहीं होगा. और जल्दबाजी करने से बहुत नुकसान हो सकता है. इससे पहले से ही परेशान बच्चों और शिक्षकों पर मनोवैज्ञानिक दबाव पड़ सकता है. मेरे सबसे महान शिक्षक वे हैं जिन्होंने शांति बिखेर दी और मुझे यकीन दिलाया कि अंत में सब कुछ ठीक हो जाएगा यदि हमदर्दी और आपसी मुहब्बत के लिये वक्त निकाला जाए.

और अंतिम सलाह यह कबूल करना है कि इस वक्त के दौरान कुछ आम मसले हैं जिनका हम सामना करते हैं. इसके अलावा, हमारी सबसे ज़्यादा चुनौतियाँ दुविधाएँ हैं जो दो या दो से अधिक पथरीले रास्तों के बीच विकल्प प्रस्तुत करती हैं. तो आइये, हम तब तक देरी न करें जब तक कि सही समाधान प्रस्तुत न हो जाए, और न ही यह दिखावा करें कि एक अपूर्ण कार्य-योजना सभी के लिये सर्वोत्तम है. इसके बजाय, दुविधाओं को एक तरफ रखकर पाठ्यक्रम को समायोजित करके, हमारी देखभाल में छात्रों और हमारे साथियों और सहकर्मियों के लिये लागत और लाभों को संतुलित करने के लिये स्थानीय रूप से मुनासिब तरीकों की तलाश की जानी चाहिए. यही अच्छे शिक्षकों ने हर दिन, हर साल और हमेशा के लिये किया है. इस अहम काम को जारी रखने के लिये मैं आपके अंदर हिम्मत, हिमायत और दवादारी की ख्वाहिश रखता हूँ.

(लेखक एरिज़ोना स्टेट यूनिवर्सिटी, अमेरिका में स्कूल ऑफ एजुकेशन में प्रोफेसर हैं।)

कोविड काल में ऑनलाइन शिक्षा का गरीब परिवारों पर प्रभाव

बी.सिवरामन और कुमुदिनी पति

भले ही किसी को अच्छा लगे न लगे, महामारी की अस्वाभाविक स्थिति में स्कूल जाने वाले बच्चों की शिक्षा में एक बड़ा बदलाव आया है और यह है ऑनलाइन शिक्षा की ओर बढ़ना। यह देखा गया है कि नई ऑनलाइन शिक्षा पद्धति में ढेर सारी असाध्य समस्याएं हैं। पर महामारी-पूर्व समय में भी स्कूली शिक्षा समस्याग्रसत रही है, जैसे परीक्षा-केंद्रित रटकर सीखने की पद्धति, असमानता और शिक्षा की गुणवत्ता में भारी कमी, जैसा कि कई सर्वेक्षणों से पता चला है।

आज ऑनलाइन शिक्षा हमारे लिए मजबूरी बन गई है। ऐसी परिस्थिति में जब शिक्षा व्यवस्था पुराने रटंत-विद्या वाले मॉडल व वर्तमान समस्याग्रस्त ऑनलाइन शिक्षा का घाल-मेल बन गया हो, हम महामारी की चुनौती के दौरान वैकल्पिक शिक्षा का मॉडल तैयार करने की ओर कैसे बढ़ें?

इस विषय पर हमने कोविड रिस्पांस वाच की ओर से कई छात्रों, अध्यापकों, शिक्षाविदों और शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे ऐक्टिविस्टों से बात की।

महामारी-पूर्व परीक्षा-केंद्रित रटंत विद्या वाली शिक्षा का मॉडल

महामारी-पूर्व के दौर में स्कूल के अंतिम चरण में कदम रखने वाले छात्रों के लिए शिक्षा का एकमात्र मकसद अधिक से अधिक नंबरों के पीछे भागना बन गया था। इसका सबसे बेहतरीन नमूना हमें कुछ नामी कॉलेजों और उच्च 'ब्रांड इक्विटी' वाले पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेने की मारा-मारी में दिखता है। उदाहरण के लिए, इस वर्ष [संपादक: 2020-21] दिल्ली विश्वविद्यालय के कुछ पाँच-सितारा कॉलेजों में प्रवेश के लिए कट-ऑफ 98 प्रतिशत था। भारत के अन्य राज्यों में भी शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने की दिशा में बहुत कुछ करना बाकी है।

स्कूली शिक्षा पर सालाना सर्वेक्षण करवाने वाले एनजीओ, 'प्रथम', के द्वारा सामने लाए गए तथ्य सचमुच चिंताजनक हैं। उसकी 2018 की रिपोर्ट के अनुसार स्कूल में दाखिल 14-18 आयु वर्ग के छात्रों में 11 प्रतिशत अपनी मातृभाषा में कुछ भी नहीं पढ़ पा रहे थे, गणित में केवल 19 प्रतिशत छात्र अंकों को घटा पा रहे थे और 26 प्रतिशत भाग कर पा रहे थे। और, जहां रटंत विद्या का बोलबाला है, 2016 के एक एनसीईआरटी (NCERT) सर्वे ने पाया कि कक्षा 10 के आधे से ज्यादा छात्र गणित और विज्ञान के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पा रहे थे। कुल मिलाकर देश की शिक्षा व्यवस्था करोड़ों ऐसे लोगों को तैयार कर रही है जिन्हें रोजगार नहीं मिल सकता और जिनकी शिक्षा उभरती डिजिटल अर्थव्यवस्था के किसी काम की नहीं है। सत्येंद्र नाम के एक युवक ने कहा,"जब छात्र फेल होते हैं या कम नंबर पाते हैं, उनके अभिभावक उन्हें प्राइवेट ट्यूशन के लिए भेज देते हैं। चिकित्सा और प्रबंधन के पेशेवर पाठ्यक्रमों के लिए होड़ लगी रहती है, खासकर भारतीय मध्यवर्ग के बीच; इसलिए अभिभावक अपने बच्चों को 'कोचिंग सेंटरो' में भेजते हैं। प्रवेश परीक्षाओं की तैयारी के नाम पर ये छात्रों से प्रति माह 25,000 से लेकर 50,000 रु तक वसूल लेते हैं। महामारी

के समय, जब स्कूल बंद हैं, कोचिंग का धंधा बढ़ गया है और लाॅकडाउन के समय ट्यूशन और कोचिंग भी ऑनलाइन हो गए हैं।''

तवे से सीधे गिरे आग में

बहुसंख्यक छात्र, अध्यापक और अभिभावक, जिनसे हमने बात की, ऑनलाइन शिक्षा से नाखुश थे। महामारी के दौर में ऑनलाइन शिक्षा की ओर जो 'शिफ्ट' हुआ है, उसने स्कूली शिक्षा में मौजूद समस्याओं को कई गुना बढ़ा दिया है। ये केवल संक्रमणकाल की समस्याएं नहीं हैं। बल्कि ये बुनियादी समस्याएं हैं। इनमें से प्रमुख डिजिटल विभाजन है।

डिजिटल विभाजन

वेनिल्ला, कक्षा 10 की 'टॉपर' है; उसका स्कूल तमिलनाडु के उलुंडुरपेट के पास के गांव में है। वह कक्षा 12 की पढ़ाई केवल इसलिए नहीं कर पाई कि शिक्षा अब ऑनलाइन है और वेनिल्ला के पास न कम्प्यूटर है न ही स्मार्टफोन। वह पूरी तरह से पढ़ाई छोड़ने वाली थी। उसके संकट को जानने के बाद चेन्नई के कुछ अध्यापकों ने पैसा जमा कर उसके लिए स्मार्टफोन खरीदा। पर घर में तीन बच्चे हैं। उसके साथ उसके छोटे भाई व बहन का झगड़ा होने लगा कि फोन कौन ले क्योंकि सभी की ऑनलाइन कक्षाएं चल रही हैं। जिस अध्यापक ने फोन खरीदा था, वे बताने लगे कि फोन करने पर पिता ने उठाया और बताया कि वे मवेशी चराने बाहर निकले हैं, पर फोन लेकर आए हैं। गरीबी में डूबे इस देश की सच्चाई यही है!

न केवल ग्रामीण परिवार, बल्कि बहुसंख्यक शहरी गरीब और निम्न मध्यम वर्गीय परिवारों की भी स्थिति नहीं थी कि वे 25,000-50,000 रु खर्च करके बच्चे को कम्प्यूटर दिला सकें। कइयों के पास स्मार्टफोन खरीदने के लिए 3000-4000 रु भी नहीं थे, जो महामारी के दौर में आवश्यक सामग्री की श्रेणी में आ गया है; तब और भी ज्यादा जब अभिभावकों की नौकरियां और वेतन जाते रहे।

इलाहाबाद के केंद्रीय विद्यालय की सेवानिवृत्त अध्यापिका श्रीमती गायत्री कुमार बताती हैं, ''एक दिन सुबह-सुबह मेरे यहां काम करने वाली दाई ने बताया कि अगले दिन उसके दोनों बच्चों की ऑनलाइन परीक्षा है, पर उनके पास स्मार्टफोन नहीं है। फिर बच्चे इतने दिन पढ़ भी नहीं पाए थे तो उन्हें कुछ नहीं आता। मुझे सारे दिन और देर रात तक बैठकर उन्हें पढ़ाना पड़ा और 'ग्रुप ऐडमिन' से विनती करनी पड़ी कि मेरा और एक पड़ोसी का फोन नंबर ग्रुप में जोड़ दें ताकि ये बच्चे परीक्षा दे सकें।''

10वीं कक्षा की एक मध्यम-वर्गीय परिवार की छात्रा, ईशिता, जो इलाहाबाद के एक अच्छे स्कूल में पढ़ती है, काफी परेशान है। वह बताती है,''ऑनलाइन क्लास करना केवल एक बार का खर्च नहीं है। कम-से-कम 1 घंटे ऑनलाइन पढ़ना होता है। इसके अलावा काफी पाठ्य-सामग्री डाउनलोड करनी पड़ती है। फिर वीडियो, फोटो और टेक्स्ट फाइलें भी अपलोड करनी पड़ती हैं। 1.5 जीबी डाटा तो खर्च होता ही है। बीएसएनएल का सबसे सस्ता 2.5 जीबी वाला प्लान 460 रु का है। वह भी अधिकतर ठीक से नहीं चलता। इसलिए हमें दूसरी प्राइवेट कम्पनियों से बड़े प्लान खरीदने पड़ते हैं। महीने में 1000 रु से अधिक खर्च हो जाता है।''

'प्रथम' के ऐनुअल सर्वे ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट (एएसईआर) 2020, जिसे महामारी के समय 52,227 छात्रों के बीच व्यापक फोन सर्वे कर तैयार किया गया, ने पाया कि 11 प्रतिशत स्कूली बच्चे ही ऑनलाइन शिक्षा ले पा रहे हैं। यानि 89 प्रतिशत बच्चे क्लास नहीं कर पाते हैं। जब 20 प्रतिशत बच्चों के पास पाठ्य पुस्तक ही नहीं थीं, वे स्मार्टफोन कैसे

खरीद पाते? लगभग 38 प्रतिशत बच्चे - चाहे वे ग्रामीण क्षेत्रों के हों या फिर शहरी गरीब हों - ऐसे घरों के हैं जहां स्मार्टफोन नहीं है। जिन 61.8 प्रतिशत घरों में कम-से-कम एक स्मार्टफोन था, उनके पिता काम पर निकलते समय फोन ले जाते। तो इस श्रेणी के बच्चों का एक बड़ा हिस्सा भी पढ़ने से वंचित रह जाता।

जहां एक से अधिक बच्चे होते हैं, उनकी ऑनलाइन कक्षाओं का समय एक साथ होने के कारण परेशानी होती है। रोहनी दवा के थोक विक्रता के यहां कर्मचारी है। उसका एक बेटा 10वीं में और दूसरा 12वीं में है। पर उनके पास स्मार्टफोन नहीं हैं। रोहनी कहता है, ''केवल जब मैं घर पर रहता हूं, एक बच्चा क्लास कर पाता है। अब मुझे दोनों के लिए स्मार्ट फोन खरीदने पड़ेंगे। न्यूनतम खर्च 10,000 रु आएगा। मेरी बेटी का दाखिला नर्सरी में होना था, पर स्कूल महामारी की वजह से बन्द है। उसे ट्यूशन के लिए भेजता हूँ। इसका भी 500 रु महीना लगता है। फिर इंटरनेट का खर्च भी होगा।''

ऑनलाइन शिक्षा महंगी है

कई बार ऑनलाइन शिक्षा के लिए 'हार्डवेयर' सालाना स्कूल फीस के बराबर होता है। आवर्ती खर्च बस की फीस और पैक्ड नाश्ते के खर्च से अधिक हो जाता है। स्कूल अभी भी पूरी फीस लेता है, जबकि ऑनलाइन शिक्षा चल रही है।

माँओं पर दूना बोझ

शहरी मध्यम वर्ग भले ही अपने बच्चों के लिए स्मार्टफोन और कम्प्यूटर खरीद सकता है, पर कई माँओं को बहुत सारा समय अपने प्राईमरी के बच्चों को ऑनलाइन क्लास के साथ सामंजस्य बैठाने में मदद करने में लग जाता है। यह भी एक कारण है कि बहुत सी महिलाएं श्रमिक-वर्ग से बाहर होती जा रही हैं। अपनी दिक्कतों को बयान करते हुए इलाहाबाद के एक डिग्री कालेज की अध्यापिका श्रीमती रुचिका वर्मा कहती हैं, ''मेरा छोटा बेटा कक्षा 5 में हैं। मेरी अपनी ऑनलाइन क्लास चलती रहती हैं इसलिए मैं उसे समय नहीं दे पाती। मैं अपनी ग्रैजुएट बेटी को उसके पास बैठाती हूं, पर जब उसके पास समय नहीं होता, तो बेटे की क्लास छूट जाती हैं, और मुझे रात को बैठकर उसकी भरपाई करनी पड़ती है।''

मनस्विनी मिश्रा सिलचर, आसाम में रहने वाली गृहिणी हैं, जिनकी बेटियां कान्वेंट स्कूल में पढ़ती हैं। वह कहती हैं, ''मुझे कई स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ हो गई हैं क्योंकि काम बहुत बढ़ गया है। मुझे छोटी बेटी के साथ बैठकर 3 घंटे ऑनलाइन क्लास करवाना पड़ता है। फिर 'होमवर्क' कराने में 2 घंटे जूझना पड़ता है। यही नहीं, प्रोजेक्ट का काम दिया जाता है और योगासन के वीडियो बनाकर भेजने पड़ते हैं। पाठ्यक्रम से इतर तमाम अतिरिक्त गतिविधियां या 'एक्स्ट्राकरिकुलर ऐक्टिविटीज़ भी होती हैं, कभी गणतंत्र दिवस के लिए कविता बुलवाकर वीडियो बनाना तो कभी विश्व पर्यावरण दिवस का चार्ट तैयार करवाना होता है। वीडियो संपादन करना, फिर उसे अपलोड करना भारी काम लगता है। बेटी को अक्सर सिरदर्द पकड़ लेता है। पर सबसे अच्छे ग्रेड उन्हीं को मिलते हैं जिनका काम अभिभावक या कोई पेशेवर व्यक्ति करके दे देता है।'' वह बताती हैं कि उनके घर पर जो 'बाई' काम करती हैं, उनके बेटे की पढ़ाई पूरी तरह बंद हो गई क्योंकि वह ऑनलाइन शिक्षा के लिए फोन नहीं दिला सकतीं। कई अध्यापक बताते हैं कि शहरों में ऑनलाइन शिक्षा में 50 प्रतिशत बच्चे हाज़िर ही नहीं होते।

छात्रों और अध्यापकों पर काम का बोझ बढ़ा

ऑनलाइन शिक्षा के पाठ्यक्रम को तैयार करने के लिए किसी ने दिमाग भी नहीं लगाया है। शिक्षा क्षेत्र में उच्च स्तर के नौकरशाहों ने बिना सोचे-समझे बच्चों पर पढ़ाई का भारी बोझ लाद दिया है, जिसमें रोज के 'एसाइनमेंट' होते हैं और कठोर समय-सीमा। कई बार बच्चों को लम्बी कविताएं गाकर या व्यायाम करके अथवा मॉडल बनाकर उसकी वीडियो या फोटो बनाकर ऑनलाइन पोर्टल पर उसी दिन अपलोड करना पड़ता है। 10-12 घंटे लग जाते हैं और माँओं को अपने काम छोड़कर उनके साथ लगे रहना पड़ता है।

अध्यापकों का काम भी दूना हो गया है पर वेतन नहीं बढ़ा। ऑनलाइन लेक्चर तैयार करना, बहुत सारी पाठ्य-सामग्री डाउनलोड करके एकत्र करना और भेजना, एसाइनमेंट बनाकर भेजना और उन्हें जाँचना काफी मुश्किल होता है।

ऑनलाइन कक्षाओं की संरचना सही नहीं

गरीब बच्चे ऑनलाइन पढ़ाई व्हाट्स-ऐप ग्रुप से ही करते हैं और मध्यम-वर्गीय छात्र ज़ूम या गूगल मीट का प्रयोग करते हैं। पर अधिक समय क्लास चलने पर अधिक डाटा खर्च होता है, जिसके कारण एक क्लास को आम तौर पर 40 मिनट से अधिक नहीं चलाया जाता। 30 मिनट की कक्षा के बाद केवल 10 मिनट का समय छात्रों द्वारा सवाल पूछने के लिए बचता है। इस तरह ऑनलाइन शिक्षा ने अध्यापक और छात्र का आपसी संबन्ध खत्म कर दिया है।

परीक्षा को लेकर दुविधा

शिक्षा को टेस्ट करने का एकमात्र माध्यम, जो चल रहा है, वह है परीक्षा। पर अधिकारी वर्ग को हमेशा डर रहता है कि बच्चे नकल करेंगे या किसी दूसरे से उत्तर लिखवा लेंगे। इसलिए इस बार कई स्कूलों में बड़ी कक्षाओं के बच्चों को स्कूल बुलाकर परीक्षा दिलवाई गई। पर कोविड का खतरा भी भय पैदा कर रहा है। यह इतनी बड़ी दुविधा का मसला बन गया कि स्वयं प्रधानमंत्री को अपनी अध्यक्षता में बैठक करनी पड़ी और केंद्रीय विद्यालयों के लिए 10वीं और 12वीं की परीक्षा को न लेने का फैसला लेना पड़ा। राज्य के विद्यालयों के लिए फैसला उन्हीं पर छोड़ दिया गया। कुछ राज्यों ने तय किया है कि वे अंतिम परीक्षा भी लेंगे जबकि अन्य स्कूलों ने केंद्र की नीति अपनाई। इससे अभिभावकों में भारी दुविधा पैदा हो गई है। आखिर 12वीं कक्षा की परीक्षाएं तब होती हैं जब छात्र अपने जीवन के एक निर्णायक मोड़ पर पहुंचता है। ग्रेजुएट कोर्सेस में दाखिला इस परीक्षा के परिणाम पर निर्भर होता है। तो बच्चे का भविष्य इस परीक्षा पर निर्भर है।

प्राफेसर ए. मार्क्स तमिलनाडु में शिक्षा सुधार के क्षेत्र में काम कर रहे प्रखर ऐक्टिविस्ट हैं और वे फोरम फॉर कनसर्न्ड टीचर्स नामक अध्यापकों के अनौपचारिक नेटवर्क के सह-संस्थापक भी हैं। यह फोरम तमिलनाडु में शिक्षा के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन के लिए काम करता है। इस फोरम ने हाल में 70-80 अध्यापकों की ऑनलाइन बैठक की। बैठक में अधिकतर भागीदारों का मानना था कि यह अति आवश्यक है कि स्कूल की अंतिम परीक्षाओं को 3 माह के लिए टाल दिया जाए और तभी कराया जाए जब समस्त अध्यापकों, कर्मचारियों और छात्रों का टीकाकरण पूरा हो जाए। बड़ी कक्षा के छात्रों की कक्षाएं मात्र 3 माह चली थीं पर कोविड-19 की दूसरी लहर के कारण इन्हें जारी नहीं रखा जा सका था। इसलिए परीक्षा को 3 घंटे की जगह 1 घंटे का होना चाहिये और प्रश्न-पत्र छोटा होना चाहिये। प्रोफेसर मार्क्स ने एक चिंताजनक अवलोकन भी किया। उनके अनुसार बैठक में उपस्थित बहुत से अध्यापकों का कहना था कि क्योंकि कक्षाएं नहीं चलीं और ऑनलाइन शिक्षा महंगी है, इस वजह से गरीब घरों की कई लड़कियों की शादी जल्दी करा दी जा रही है और बाल विवाह बढ़ रहा है। लड़कों को घर में फालतू बैठकर समय गंवाने के बजाए काम करने को

बाध्य किया जा रहा है। इसलिए 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को बाल श्रम में लगा दिया जा रहा है और 18 वर्ष से कम आयु के किशोरों से भी श्रम करवाया जा रहा है।

गणित की अभिनव शिक्षा को लेकर एनसीईआरटी की मदद कर रहे वी एस एस शास्त्री का मानना है कि पर्याप्त फंडिंग के साथ उच्च कोटि की रुचिकर ऑनलाइन शिक्षा किट तैयार ही नहीं की गई हैं। पर उनकी बातों में ऑनलाइन शिक्षा को लेकर एक निराशा दिखाई पड़ी। उनका कहना है कि ऑनलाइन शिक्षा कक्षाओं में शिक्षा का विकल्प कभी हो ही नहीं सकती। सारे तरीके-ऐनिमेशन, वीडियो, डाटा विज़ुअलाइज़ेशन तकनीक, क्विज़ (प्रश्नोत्तरी) और ऑनलाइन पुरस्कृत प्रतियोगिताएं अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाए हैं। हालांकि उत्तर प्रदेश के कुछ अध्यापकों का कहना है कि छात्र अध्यापकों में भी भेद करते हैं। यदि कोई रोचक ढंग से पढ़ाता है, तो छात्रों की उपस्थिति अधिक होती है, अन्यथा वे अपनी हाज़िरी लगाकर फिल्म या टीवी सीरियल देखने में मशगूल हो जाते हैं। कई बार कम्प्यूटर पर बैठे हुए भी वे सोशल मीडिया में अपने मित्रों से बात करना, ऑनलाइन गेम खेलना या यूट्यूब पर कुछ देखना पसंद करते हैं।

महामारी के दौर में शिक्षा का वैकल्पिक मॉडल

छात्रों ने एक पूरा शैक्षणिक सत्र 20201-21 खो दिया है और यद्यपि दूसरी लहर घटाव पर है, कई राज्यों में अभी भी संक्रमित लोगों की संख्या काफी अधिक है। लॉकडाउन की अवधि बढ़ा दी गई है और पूरी संभावना है कि छात्र एक और वर्ष खो देंगे। चूँकि, मजबूरी ही सही, कुछ समय के लिए तो ऑनलाइन शिक्षा क्लासरूम शिक्षा की जगह ले ही लेगी, सवाल उठता है कि हम क्या करें जिससे शिक्षा को बेहतर बनाया जा सके। इस सवाल पर कुछ सुझाव मिले हैं:

बेंगालुरु के पी आर एस मणि का कहना है, ''लैपटॉप और महंगे स्मार्टफोन की जगह हाथ में पकड़कर काम करने वाले सस्ते उपकरण मिलते हैं जैसे 1000 रु वाले टैबलेट। केंद्र सरकार को चाहिये कि सभी स्कूली छात्र-छात्राओं को ये उपकरण मुफ्त में बांटे। दरअसल जयललिता ने तमिलनाडु में ऐसा किया था और अखिलेश यादव ने भी यूपी में लैपटॉप बांटे थे। यदि केंद्र ऐसे उपकरण 20 करोड़ छात्रों को दें, जिनमें गरीब, दलित, पिछड़ी जाति के छात्र और छात्राएं शामिल हों, तो अधिक-से-अधिक 20,000 करोड़ रुपये खर्च होंगे, जो सरकारी खजाने के लिए कोई बहुत बड़ी रकम नहीं है। बल्कि देश के भविष्य के लिए यह एक अच्छा निवेश है।''

घर में सीखने के लिए किट

सस्ते लैपटॉप और टैबलेट के अलावा बच्चों को घर में शिक्षा ग्रहण करने के लिए 'लर्निंग किट' दिये जाने चाहिये। उदाहरण के लिए ऐबेकस, अक्षरों वाले ब्लॉक, चार्ट, नक्शे और डीवीडी आदि। इन्हें सरकार के खर्च पर स्कूल के द्वारा दिया जाना चाहिये।

ऑनलाइन शिक्षा के लिए अध्यापकों और छात्रों का प्रशिक्षण

अध्यापकों को अलग-अलग स्तर का प्रशिक्षण दिया गया है पर छात्रों को ऑनलाइन शिक्षा के लिए प्रशिक्षण नहीं दिया गया है। बहुत सारे गरीब छात्र, जिन्हें इंटरनेट इस्तेमाल करना नहीं आता, व्हाट्सएप ग्रुप में हिस्सा लेना नहीं जानते अथवा अपना काम अपलोड नहीं कर पाते।

रोचक ऑनलाइन शिक्षा किट विकसित करनी होगी

छात्रों को व्यापक शैक्षणिक विकल्प दिये जाने चाहिये, जैसे विषय का चयन - जैसा कि एनईपी 2020 में भी कल्पना की गई है - और वैकल्पिक ऑनलाइन शिक्षा स्रोत। व्यापक राय-मशविरे के जरिये उन्हें ऑनलाइन शिक्षण पद्धतियों के निर्माण में भूमिका दी जानी चाहिये। व्यक्तिगत, आमने-सामने और एक-एक छात्र के साथ अध्यापक का संबंध होना चाहिये।

सामुदायिक स्कूलों को प्रोत्साहन देना है

जब पथ निर्धारक स्कूल बंद हो गए हैं, बहुत से स्व-संगठित सामुदायिक स्कूल पैदा हुए हैं, खासकर शहरी गरीबों के बीच। ये सामुदायिक केंद्रों, जैसे आंगनवाड़ियों या लोगों के बड़े घरों में चलते हैं और इनमें संध्याकालीन स्कूल या अनौपचारिक कक्षाएं होती हैं। अल्प-कालीन स्वयंसेवी, जिन्हें सामुदायिक संसाधनों से पारिश्रमिक दिया जाता है, यहां पढ़ाते हैं।

प्राफेसर सिवकुमार, भूतपूर्व अध्यक्ष तमिल नाडु गवरमेंट कॉलेज टीचर्स ऐसोसियशन, ने बताया कि तमिल राष्ट्रवादी अधिकारों के लिए लड़ने वाले एक प्रख्यात ऐक्टिविस्ट प्रोफेसर कल्याणी ने टिंडिवानम में थाई तमिल पल्ली यानि मदर तमिल स्कूल शुरु किया था। इस प्रयोगात्मक पाठशाला में 172 बच्चे पढ़ते थे और जब महामारी हुई तो उन्होंने स्कूल को दर्जन से अधिक छोटी-कक्षाओं में विभाजित कर दिया। समुदाय के लोग, जिनके पास बड़े घर थे, अपने गलियारे या छायादार छत बच्चों की छोटी कक्षाओं के लिए दे देते। सामुदायिक चंदे से 15-16 बच्चों की इन कक्षाओं को पढ़ाने के लिए कुछ नए अध्यापकों की नियुक्ति की गई। फिर सभी बच्चों के लिए मिड-डे मील का प्रबंध भी किया गया। इन छोटी कक्षाओं में दलित और गरीब ओबीसी (पिछड़ा वर्ग) बच्चों के संग छात्राओं की हाजरी भी बढ़ती गई और एक वर्ष तक बिना संक्रमण के, बच्चों ने प्राथमिक शिक्षा पूरी की। क्योंकि शिक्षक-छात्र अनुपात भी बेहतर था, बच्चों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जा सका। भले ही करोड़ों बच्चों की प्राथमिक शिक्षा के लिए ऐसे विलक्षण, वैचारिक स्तर पर उन्नत किस्म के मॉडल व्यवहारिक न हों, जहां कहीं भी समुदाय स्वयं आगे बढ़कर इन स्व-संगठित अनौपचारिक स्कूलों को शुरु करना चाहे, सरकार को नीति अपनानी चाहिये कि उन्हें कम्प्यूटर सर्वर और मॉनिटर उपलब्ध कराए, उन्हें शिक्षण सामग्री के किट यानि पाठ्य पुस्तकें, चार्ट, नक्शे, आदि उपलब्ध कराए। साथ ही, कुछ विशेषज्ञों को नियुक्त किया जाए ताकि वे बाल-सुलभ सॉफ्टवेयर और शिक्षण के किट विकसित करें और बच्चें को निःशुल्क प्रयोग करने की व्यवस्था करें।

प्रख्यात चिंतक और शिक्षाविद, प्रोफेसर कृष्ण कुमार ने कोविड रिस्पान्स वाच से अपना मत साझा करते हुए कहा, "ऑनलाइन शिक्षा केवल एक काम-चलाऊ व तात्कालिक प्रबंध है। स्कूल कोशिश करते हैं कि सर्वोच्च प्रबंधन और नौकरशाही को खुश करें। उन्हें इससे मतलब नहीं कि ऑनलाइन शिक्षा को मौलिक कैसे बनाया जाए। बच्चों को बहुत सारे काम देकर उनको परेशान कर दिया जाता है। मैं तो उस दिन का इंतेज़ार कर रहा हूं जब ऑनलाइन शिक्षा पद्धति समाप्त हो जाएगी।"

जाने-माने शिक्षाशास्त्री (अभाशिअमं के अध्यक्ष मंडल के संस्थापक सदस्य) प्रो० अनिल सदगोपाल ने पूरी स्थिति का मूल्यांकन करते हुए कहा,"बजाए इसके कि अध्यापकों को पंचायत चुनाव के लिए भेजा जाता, सरकार को चाहिये था कि उन्हें गरीबों के बीच भेजकर इस महामारी के दौर में अस्थायी स्कूलों में पढ़ाने की जिम्मेदारी दी जाती। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ऑनलाइन शिक्षा में भारी निवेश करके मुनाफा कमा रही हैं, इसलिए ऑनलाइन शिक्षा को स्थायी बनाने की

पूरी योजना चल रही है। पर यू एस ए में भी, जहां सारी सुविधाएं हैं, अध्यापक ऑनलाइन शिक्षा के विरोध में हैं, क्योंकि उनके अनुसार वे परख नहीं पाते हैं कि बच्चे ने कितना समझा है। कुल मिलाकर ऑनलाइन शिक्षा कोई शिक्षा नहीं है। यह लॉकडाउन में शिक्षा नहीं, बल्कि शिक्षा का ही लॉकडाउन है!''

(लेखक सामाजिक-राजनैतिक कार्यकर्त हैं। इस लेख का संक्षिप्त प्रारूप कोविड रिस्पान्स वॉच में छप चुका है। साभार प्रकाशित)

[सम्पादकीय टिपण्णी: 'असर' की रपटों में नियमित शिक्षकों पर आरोप लगाने, सरकारी स्कूल बंद करने, 'बजट' क़िस्म के छोटे निजी स्कूलों को बढ़ावा देने, शिक्षा में राज्य के ख़र्च/हस्तक्षेप' को कम करने, आदि बिंदु दिखते हैं। अमरीका में इस विमर्श की बुनियाद पर रची गई नो चाइल्ड लेफ़्ट बिहाइंड (2002) की नीति के ख़तरनाक अंजाम (देखें डायान राविच 'द डेथ ऐंड लाइफ़ ऑफ़ द ग्रेट अमेरिकन स्कूल सिस्टम'. 2010) हुए हैं। केंद्र व दिल्ली सरकार की शिक्षा नीतियों में इसका सीधा प्रभाव कम स्तर की सामग्री, हल्की पाठ्यचर्या, सीमित व निरंतर टेस्टिंग के आधार पर विद्यार्थियों के 'योग्यता-आधारित' बँटवारे में सामने आया है। 'प्रथम' द्वारा संचालित असर की रपटों के केंद्र में अधिकतम बच्चों द्वारा 'उचित स्तर की साक्षरता' हासिल न कर पाने और गणित के 'सरल सवाल' न हल कर पाने की चिंता है। इसका ज़िक्र अक़सर सरकारी स्कूलों की अक्षमता साबित करने के लिए किया जाता है। इनमें ग्रामीण इलाक़ों के जातीय/वर्गीय संदर्भ नहीं झलकते हैं, न ही भाषा के सवाल के प्रति कोई फ़िक्र है। राशिनी 2020 का फ़ॉउंडेशनल लिटरेसी ऐंड न्यूमेरेसी (गणना व साक्षरता के आधारभूत कौशल) पर ज़ोर देना और पाठ्यचर्या के बाक़ी हिस्सों को तमाम तरीक़ों से अकादमिक रूप से कमज़ोर करना एक दूसरे के पूरक हैं तथा दमित वर्गों को तालीम से बेदख़ल करते हैं। पूँजीवादी शासन व्यवस्था में बेरोज़गारी को बहुत हद तक विद्यार्थियों में उपयुक्त कौशलों की कमी से जोड़ने की कोशिश होती रही है।]

*****

उच्च शिक्षा में निजीकरण से उत्पन्न संकट

डॉ असीम सत्यदेव

'विद्या ददाति विनयम्।' मनुष्य को जीवन काल में पितृ ऋण, देव ऋण के साथ-साथ ऋषि ऋण से भी मुक्त हो जाना चाहिए। ऋषि ऋण का अर्थ होता है शिक्षा ग्रहण करने का ऋण। इससे मुक्ति का उपाय है जो कुछ शिक्षा ग्रहण की है उसे दूसरों को प्रदान करना। इस तरह के मूल्यपरक वचन हम लोग ''शिक्षा का महत्व'', 'मानव-जीवन और शिक्षा' इत्यादि निबन्ध लिखते हुए मोटे अक्षरों में लिखते थे। गुरू को ब्रह्मा, विष्णु, महेश का स्थान देने वाले संस्कृत श्लोक से लेकर कबीर के दोहों में गुरू को गोविन्द से भी पहले प्रणाम करने के नीति-वाक्यों से भी पाठ्यक्रम के माध्यम से परिचय हुआ था। हमारे शिक्षक भी समय-समय पर इन विषयों पर व्यापक चर्चा करते रहे थे। बेरोजगारी की बढ़ती रफ्तार के माहौल में जब 'रोजगारपरक शिक्षा' का सवाल आया तो शिक्षक-समुदाय ने साफ तौर पर कहा कि 'निश्चित रूप से जिसको जो ज्ञान हासिल है उसे उसी क्षेत्र में रोजगार मिलना चाहिए किन्तु शिक्षा मात्र रोजगार प्रदान करने का साधन नहीं है। शिक्षा के लक्ष्य को इतना सीमित नहीं किया जाना चाहिए। रोजगार प्रदान करना और उसमें सफल होना या नहीं होना आर्थिक प्रबन्धन का विषय है। शिक्षा तो जीवन-परक होनी चाहिए।' उस समय का बड़ा सवाल यही था कि ''शिक्षा सबको क्यों नहीं मिल रही है?'' इसीलिए इस सम्बन्ध में जो भी आन्दोलन, प्रदर्शन होते थे उनमें 'सबको शिक्षा, समान शिक्षा' का नारा लगाया जाता था। उस समय सरकार की तरफ से जवाब आता था कि इस दिशा में कदम उठाये जा रहे हैं। फीस माफी, छात्रवृत्ति, गरीब विद्यार्थियों को फंड, सार्वजनिक पुस्तकालय का निर्माण इत्यादि कदम इसीलिए उठाये जा रहे हैं कि कोई शिक्षा से वंचित नहीं रहे। यहाँ तक कि जो लोग वयस्क हो चुके हैं और अपने बाल्यकाल से ही शिक्षा से वंचित कर दिये जाने का दर्द उठा रहे हैं उनके लिए प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रम चलाया जा रहा है। एक लोकतांत्रिक देश ही नहीं अपितु भारत को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश (जनसंख्या और क्षेत्रफल में बड़े चीनी जनवादी गणराज्य के मा ॅडल को लोकतांत्रिक नहीं मानने के आधार पर) कहा जाता रहा था, अतः लोकतांत्रिक कार्यों में सबको शिक्षा उपलब्ध कराना भी अनिवार्य कामों की श्रेणी में गिना जाता रहा था। जैसे-जैसे शिक्षा की आम जनमानस से दूरी बढ़ती गयी उसी रफ्तार से शिक्षा प्रदान करने की माँग भी बढ़ती गयी। 1986 में 'नयी शिक्षा नीति' के नाम से एक दस्तावेज आया। कहने को तो यह आम जनमानस को शिक्षित करने की योजना का दस्तावेज था लेकिन 'सच' इसके विपरीत था। 'फीस बढ़ाने और सीट घटाने' की व्यवस्था थी। दूरस्थ शिक्षा यानि विद्यालयों-महाविद्यालयों से दूर पत्राचार, टेलीविजन के माध्यम से शिक्षा देने का कार्यक्रम था। आगे 1992 में निजीकरण ने शिक्षा के क्षेत्र में खुल्लम-खुल्ला दखलन्दाजी की और कल्याण की अवधारणा का त्याग कर 'शिक्षा' को भी मुनाफे का साधन मान लिया गया। विद्यार्थी तथा सामाजिक कार्यकर्ता यह आह्वान कर रहे थे कि ''शिक्षा है सबका अधिकार, बन्द करो इसका व्यापार'' लेकिन अब शिक्षा पूरी तरह से व्यापार बन गयी। मुनाफाखोरों के बाजार में 'शिक्षा' को भी उतारा गया और यहाँ भी बाजार के नियमों के मुताबिक क्रिया-कलाप होने लगे। यह सिलसिला आज तक जारी है और दिनों-दिन इसके दुष्परिणाम सामने आते जा रहे हैं।

बाजार के नियमों के मुताबिक शिक्षा-व्यवस्था का संचालन करने की अवधारणा के तहत ही शायद शिक्षा मंत्रालय का नाम बदलकर 'मानव संसाधन मंत्रालय' कर दिया गया। अब तक यह माना जाता

था कि सारे संसाधन 'मानव' के लिए हैं, लेकिन अब यह मान लिया गया कि 'मानव' भी मुनाफे की व्यवस्था को चलाने का एक साधन मात्र है। अब शिक्षा लेने वाला एक ग्राहक बन गया जिससे अधिक से अधिक रूपया वसूला जाने लगा और शिक्षा देने वाला एक बौद्धिक मजदूर बन गया जिसके 'मानसिक श्रम' का अधिक से अधिक इस्तेमाल करते हुए उसे कम से कम भुगतान करने के तरीके आजमाये जाने लगे। शिक्षण संस्थान इस तरह शिक्षा की दुकान बनने लगे। इस सारी प्रक्रिया को 'स्ववित्तपोषी व्यवस्था' नाम दिया गया। शिक्षा देने की अपनी जिम्मेदारी से हाथ खींचते हुए भारत सरकार ने यह ऐलान कर दिया कि शिक्षण संस्थायें अपनी व्यवस्था खुद कर लें। फलस्वरूप स्ववित्तपोषी महाविद्यालय खुलने लगे जिनमें विद्यार्थियों से तीन गुनी-चार गुनी यहाँ तक कि दस गुनी फीस ली जाने लगी और इनमें पढ़ाने के लिए नियुक्त शिक्षकों को नाम-मात्र के वेतन (कहीं-कहीं वह भी नहीं) देते हुए उनका दोहन किया जाने लगा। विडम्बना यह रही कि स्ववित्तपोषी व्यवस्था में नियुक्त इन शिक्षकों को योग्यता के सारे प्रतिमानों पर खरा उतरना पड़ा। नयी शिक्षा नीति के आने के साथ ही पहले दो साल का स्नातक कोर्स तीन साल का कर दिया गया। शिक्षक बनने के लिए न्यूनतम अंक प्राप्ति की सारी कवायद भी इन शिक्षकों को करनी पड़ी। फिर नेट परीक्षा पास करना भी अनिवार्य कर दिया गया और तब जाकर किसी स्ववित्तपोषी संस्थान में पढ़ाने का काम मिलता। इतना ही नहीं, मान्यता प्राप्त और सरकारी अनुदान से चलने वाले महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में भी स्ववित्तपोषी पाठ्यक्रमों का चलन शुरू हुआ और इनमें पढ़ाने वाले शिक्षकों को आधा-अधूरा वेतन मिलने लगा। एक ही महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को पढ़ाने वाले शिक्षकों की कई श्रेणियाँ बनने लगीं। पूर्ण वेतन पाने वाले शिक्षक, मानदेय शिक्षक, सायंकालीन शिक्षक, प्रबन्धकीय व्यवस्था के अन्तर्गत नियुक्त शिक्षक, राष्ट्र गौरवीय शिक्षक, अल्पकालिक/अंशकालिक शिक्षक इत्यादि नाम इन्हें दिये गये।

मुझे याद है कि मेरी पहली नियुक्ति गोरखपुर विश्वविद्यालय में दो महीने के लिए तदर्थ शिक्षक के रूप में हुई थी। उन दो महीनों में 700-1600 रु वेतनमान में मुझे वेतन मिला था जोकि स्थायी शिक्षक को मिलता था। उस समय समान काम-समान वेतन का नियम लागू था। यह नियम लम्बे संघर्ष का परिणाम था। स्ववित्तपोषी व्यवस्था के अन्तर्गत इसे तार-तार कर दिया गया।

1 अगस्त 2016 से 15 सितम्बर 2019 तक की अवधि में मुझे संत विनोबा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देवरिया में कार्यवाहक प्राचार्य का दायित्व उठाने का अवसर मिला था। हर महीने जब वेतन बिल आता था तो मजबूरन दस्तखत करना पड़ता था। तकलीफ होती थी कि जिस बौद्धिक श्रम के लिए स्थायी शिक्षक 1 लाख से अधिक वेतन पा रहे थे, उसी श्रम के बदले रु 10,000 और यहाँ तक रु 5,000 प्रतिमाह की धनराशि मानदेय शिक्षक और प्रबन्धकीय व्यवस्था के अन्तर्गत नियुक्त शिक्षक को दी जाती थी। ऐसे शिक्षक साथियों के साथ पूरी तरह से खड़े होने के बावजूद इस विसंगति को बदल पाना प्राचार्य की परिधि से बाहर था। जब कुएँ में ही भांग पड़ी हो तो एक बूँद उसका स्वाद लेने के अलावा क्या कर सकती है! सरकारी अनुदान से वेतन लेने वाले शिक्षकों को झटका तब लगा जब उनकी लाख चीख-पुकार के बावजूद उन्हें पुरानी पेंशन प्रदान नहीं की गयी। उसके स्थान पर दी जाने वाली नई पेंशन स्कीम वस्तुतः कोई पेंशन स्कीम नहीं है। जितनी सुविधा उसमें है, कोई भी बैंक उससे बेहतर सुविधा धनराशि जमा करने वाले को दे सकता है। लाख चीख-पुकार के बाद भी 2004 के बाद नियुक्त शिक्षकों के लिए जब पुरानी पेंशन व्यवस्था बहाल नहीं की गयी तो यह साफ हो गया कि शिक्षकों की सुविधाओं को जलाकर राख करने वाली

बाजार की यह आग स्थायी शिक्षकों को भी जला सकती है। इस दावानल को खत्म करना उनकी जिम्मेदारी बनती है।

निजी तकनीकी संस्थानों का हाल तो बहुत ही ज्यादा खराब बना हुआ है। इंजीनियरिंग तथा मेडिकल कालेजों के मालिकों ने ऐसे संस्थान खोल तो लिए लेकिन इनमें पर्याप्त वैज्ञानिक उपकरण रखना, नियुक्त शिक्षकों को समुचित वेतन देना इत्यादि व्यवस्थायें नहीं की। विद्यार्थियों से लाख, दो लाख, चार लाख, यहाँ तक कि 30-40 लाख रुपये तक लिये जाने लगे। कहीं-कहीं ऐसे मामले भी सामने आये कि लाखों-लाख रुपये खर्च करने के बाद पता चला कि उनके शिक्षण संस्थान को मान्यता ही नहीं मिली है, अतः उनकी इंजीनियरिंग या डाॅक्टरी डिग्री भी असली नहीं मानी जायेगी। विडम्बना यह रही कि आरक्षण नीति पर मेरिट हनन का सवाल उठाने, आन्दोलन करने तथा आत्मदाह करने वाले समुदाय को 'धन के आरक्षण' में कुछ भी गलत नजर नहीं आया। फलस्वरूप आज तक यह प्रक्रिया चल रही है।

'कोरोना' बीमारी के काल में ऑनलाइन शिक्षा की प्रक्रिया चलायी गयी है। इसके जरिये यह दलील भी उभर कर आ सकती है कि ''अब घर बैठे शिक्षा दी जा सकती है तो ज्यादा स्कूल-कॉलेज खोलने की जरूरत नहीं है।'' इस तरह घर बैठे खरीददारी, घर बैठे बैंक में पैसा जमा करना, निकालना, घर बैठे बिजली बिल, रेल, हवाई जहाज टिकट बुक कराना इत्यादि प्रक्रिया के तहत घर बैठे शिक्षा प्राप्त करने का कार्यक्रम भी चलाया जा सकता है।

मानवाधिकार, स्थायी नौकरी, श्रम-कानून इत्यादि की दुर्दशा की तरह शिक्षा-व्यवस्था की भी दिन-प्रतिदिन बुरी हालत हो रही है। इसने साफ-साफ दिखा दिया है कि अथक संघर्षों के पश्चात् जन-कल्याण की जो थोड़ी-बहुत योजनायें लागू करने में शासक मजबूर हुए थे आज उन्हें एक झटके से छीना जा रहा है। इसलिए हमें ''जो मिला था उसे बनाये रखने और जो मिलना बाकी है उसे हासिल करने का संघर्ष करना होगा।'' यही रास्ता बचा है और इसका कोइ शॉर्टकट भी नहीं है।

[संपादकीय टिप्पणी: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत मानव संसाधन मंत्रालय का नाम बदल कर एक बार फिर शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है, लेकिन नीति की दिशा व चरित्र में कोई बदलाव नहीं आया है, बल्कि यह नीति के बाजारवादी स्वरूप में आई तीव्रता पर एक जुमलानुमा पर्दा डालने की नाकाम कोशिश है.]

(डॉ असीम सत्यदेव रक्षा अध्ययन विभाग के प्रोफेसर रहे हैं और छात्र जीवन से ही जन पक्षधर राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रहे हैं।)

******

आइसलैंड की शिक्षा व्यवस्था

कुमार संभव

डेनमार्क, फ़िनलैंड, नॉर्वे, आइसलैंड और स्वीडन जैसे नॉर्डिक देश उच्च जीवन स्तर, अपेक्षाकृत अमन-चैन वाले शांत समाज, प्राकृतिक सौंदर्य, प्रदूषण के कम स्तर, रोज़गार और प्रति व्यक्ति आय की ऊंची दर और शिक्षा तथा स्वास्थ्य के उच्च मानकों के लिए जाने जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जारी सालाना ´वर्ल्ड हैप्पीनेस रिपोर्ट´में लगातार ये नॉर्डिक देश विश्व के सबसे सुखी देशों में स्थान पाते हैं। कोरोना की वैश्विक महामारी के बावजूद वर्ष 2021 की हैप्पीनेस रिपोर्ट में फ़िनलैंड, आइसलैंड और डेनमार्क क्रमशः पहले, दूसरे और तीसरे स्थान पर हैं, जबकि स्वीडन छठे और नॉर्वे आठवें स्थान पर। इन देशों के सुखी होने के अनेक कारणों में एक कारण इनकी शिक्षा और स्वास्थ्य व्यवस्थाओं का प्रमुखतया सार्वजनिक क्षेत्र में होना है। शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र निजी मुनाफे के लिए नहीं खोले गए हैं। नागरिकों को शिक्षा और स्वास्थ्य बहुत ही सस्ती दर पर सरकार द्वारा उपलब्ध कराए जाते हैं। सुख का सम्बन्ध निश्चिंतता से होता है और अगर भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी बुनियादी ज़रूरतों की चिंता नागरिकों को न करनी पड़े, तो वे काफी हद तक निश्चिंत रह सकते हैं। इन देशों में घर से बाहर रेस्त्रां में खाना भले ही महंगा हो, लेकिन कच्ची खाद्य सामग्री (अनाज, मांस, सब्ज़ी, फल आदि) सस्ती दरों पर ही उपलब्ध है। मोटे तौर पर ये देश सकल घरेलू उत्पाद का 10% स्वास्थ्य पर और 8.61% शिक्षा पर खर्च करते हैं। यहां इन्हीं में से एक देश आइसलैंड की शिक्षा व्यवस्था के संक्षिप्त सर्वेक्षण का प्रयास है।

2017 के आंकड़ों के हिसाब से आइसलैंड अपनी सकल राष्ट्रीय आय का 7.66% शिक्षा पर खर्च करता है, लेकिन सभी मदों में कुल सरकारी खर्च का 17.69% शिक्षा पर जाता है। मोटे तौर पर पूरी शिक्षा-व्यवस्था सार्वजनिक क्षेत्र के दायरे में आती है, निजी क्षेत्र का दखल शिक्षा के क्षेत्र में बहुत कम है। आइसलैंडिक शिक्षा प्रणाली का मूल सिद्धांत यह है कि सभी को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर होने चाहिए; चाहे कोई किसी भी लिंग, आर्थिक स्थिति, आवासीय स्थान, धर्म, सांस्कृतिक या सामाजिक पृष्ठभूमि का हो अथवा किसी भी प्रकार की शारीरिक, मानसिक बाधाओं से बाधित हो, वह शिक्षा का हकदार है। यह सिर्फ सिद्धांत ही नहीं है, व्यवहार में भी लागू है। यहाँ शिक्षा के चार स्तर हैं, जिसमें एक स्तर अनिवार्य है।

प्री-स्कूल

पूर्व विद्यालयी शिक्षा, प्री-स्कूल या नर्सरी में 18 महीने से 6 साल की उम्र तक के अधिकांश आइसलैंडिक बच्चे दाखिल होते हैं। यह शिक्षा प्रणाली का पहला स्तर है। इसे म्युनिस्पैलिटी या स्थानीय परिषदें संचालित करती हैं और उनके द्वारा फीस पर भारी सब्सिडी दी जाती है। उदाहरण के लिए, राजधानी रेक्याविक की स्थानीय परिषद् 18 महीने से 5 साल की उम्र के 6,000 बच्चों के साथ 63 प्री-स्कूल संचालित करती है। यह 1,000 बच्चों के साथ 17 निजी प्री-स्कूलों की भी देखरेख करती है। रुपयों में गिना जाए तो आइसलैंड में प्रति व्यक्ति औसत मासिक आय 3 लाख 79 हज़ार रुपए है। यानी अगर घर में चार

सदस्य माने जाएं (पति-पत्नी और दो बच्चे) तो औसत पारिवारिक आय 15 लाख 16 हज़ार बैठती है। रेक्याविक के नर्सरी स्कूलों में प्रतिदिन 4 से 8 घंटे तक रहने वाले एक बच्चे की फ़ीस रुपयों में लगभग 16,400 के करीब है, जिसमें सुबह का नाश्ता, दोपहर का भोजन और हलके जलपान का खर्च शामिल है। (यह फ़ीस भी सिंगिल पैरेंट, नर्सरी के कर्मचारियों-शिक्षकों के बच्चों, शिक्षा विभाग में काम करने वालों के बच्चों और उन बच्चों के लिए लगभग आधी हो जाती है जिनके माता-पिता में से कोई विकलांग है।) अर्थात, परिवार में दो बच्चे अगर नर्सरी में पढ़ते हैं तो परिवार को उनकी पढ़ाई पर 32,800 रुपए प्रतिमाह खर्च पड़ेगा; यानी परिवार की औसत मासिक आय का महज 2.16% ही दो बच्चों की पढ़ाई पर खर्च होगा। यह हिसाब-किताब इसलिए कि उच्च गुणवत्ता वाली प्री-स्कूल शिक्षा का लगभग कोई आर्थिक भार ही परिवार पर नहीं है, जबकि आइसलैंड कोई समाजवादी देश नहीं है। आइसलैंड के प्री-स्कूल ´अच्छे बचपन´ के नॉर्डिक जीवन मूल्य से संचालित हैं। यहां बच्चे जो भी सीखते हैं, वह सब खेल-कूद के माध्यम से। दरअसल प्री-स्कूल के लिए आइसलैंडिक भाषा में जो शब्द है, उसका अर्थ ही है- प्ले-स्कूल। इस स्तर पर खेल शिक्षा का माध्यम भी है और लक्ष्य भी। कक्षा के कमरों में ही नहीं, पूरे परिसर में ये बच्चे आज़ाद और बेख़ौफ़ दौड़ते, भागते, खेलते, तरह-तरह के झूलों पर झूलते, रंग-बिरंगे वस्त्र पहने दिख जाएंगे। अनेक तरह के खेल, खिलौने, किताबें, संगीत, नृत्य, फिल्म, पेंटिंग के उपकरणों से सुसज्जित ये स्कूल बच्चों का मन रमाए रखते हैं। स्कूल में क्या-क्या सुविधाएं होना ज़रूरी हैं, ये क़ानून के ज़रिए सुनिश्चित है। नाश्ते और खाने के अलावा बीच-बीच में उन्हें खाने-पीने की अन्य चीज़ें भी रिफ्रेशमेंट के बतौर मिलती रहती हैं। ´अच्छे और सुन्दर बचपन' के जीते जागते उदाहरण हैं ये स्कूल।

तालीम के मौजूदा इंतज़ाम के संदर्भ में आइसलैंड और भारत में तुलनात्मक बिंदु	
आइसलैंड	**भारत**
बजट : सकल घरेलू उत्पाद का 10% सेहत पर और 8.61% शिक्षा पर खर्च होता है।	सेहत और शिक्षा दोनों पर सकल घरेलू उत्पाद का 4% से कम खर्च होता है।
समान शिक्षा : शिक्षा प्रणाली का मूल सिद्धांत यह है कि सभी को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर होने चाहिए; चाहे कोई किसी भी लिंग, आर्थिक स्थिति, आवासीय स्थान, धर्म, सांस्कृतिक या सामाजिक पृष्ठभूमि का हो अथवा किसी भी प्रकार की शारीरिक, मानसिक बाधाओं से बाधित हो, वह शिक्षा का हकदार है।	असमान शिक्षा : अमीरों के लिए महँगे सुविधासंपन्न स्कूल-कॉलेज और ग़रीबों के लिए सुविधारहित सरकारी स्कूल-कॉलेज। लिंग, आर्थिक स्थिति, आवासीय स्थान, धर्म, सांस्कृतिक या सामाजिक पृष्ठभूमि और कई प्रकार की शारीरिक, मानसिक बाधाओं के आधार पर भेदभाव।
प्रति परिवार खर्च : परिवार में दो बच्चे अगर नर्सरी में पढ़ते हैं तो उनकी पढ़ाई पर औसत मासिक आय का महज 2.16% ही खर्च होता है।	मध्य-वर्ग के परिवार में दो बच्चे अगर निजी स्कूल की नर्सरी में पढ़ते हैं तो उनकी पढ़ाई पर औसत मासिक आय का बड़ा हिस्सा खर्च होता है, जो 10% या उससे ज्यादा भी हो सकता है।
छात्र-लोन : राज्य विश्वविद्यालयों में कोई शिक्षण शुल्क नहीं है, और छात्र-ऋण जीवन-व्यय और स्कूल सामग्री को कवर करने के लिए सस्ती दरों पर उपलब्ध हैं, जिन्हें काफी लम्बे समय तक चुकाने की छूट है। (आप 65 की उम्र तक इन्हें चुकाने के लिए स्वतन्त्र हैं)।	छात्र-लोन निजी संस्थानों की बेतहाशा ऊँची ट्यूशन फ़ीस की भरपाई के लिए है। सरकार ने यह प्रावधान निजी क्षेत्र की मुनाफखोरी के लिए रखा है।

अनिवार्य शिक्षा

प्री-स्कूल के बाद का चरण जो अनिवार्य शिक्षा का है वह पूरी तरह से मुफ्त है। आइसलैंडिक कानून यह निर्देश देता है कि 6 से 16 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य है। अनिवार्य शिक्षा, यानी प्राथमिक और निम्न माध्यमिक शिक्षा एक ही स्कूल स्तर का हिस्सा बनती है, जहां पहली से लेकर दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई होती है। अनिवार्य शिक्षा के लिए कोई ट्यूशन फ़ीस नहीं है।

उच्च माध्यमिक शिक्षा

इसके बाद का स्तर, यानी उच्च माध्यमिक शिक्षा अनिवार्य नहीं है, लेकिन जो कोई भी अनिवार्य शिक्षा पूरी कर चुका है उसे उच्च माध्यमिक विद्यालय में अध्ययन के पाठ्यक्रम में प्रवेश करने का अधिकार है। छात्र आमतौर पर 16-20 वर्ष की आयु के होते हैं।

पिछले कुछ वर्षों में उच्च माध्यमिक शिक्षा की अवधि चार साल से घटाकर तीन साल कर दी गयी है। छात्र आमतौर पर सोलह वर्ष की आयु के होते हैं जब वे शुरू करते हैं और उन्नीस वर्ष के होते हैं जब वे इस स्तर की शिक्षा समाप्त करते हैं। एक निजी स्कूल को छोड़कर, उच्च माध्यमिक शिक्षा के लिए कोई भी ट्यूशन फ़ीस नहीं है।

उच्च माध्यमिक स्कूल ग्रामर-स्कूलों (प्रारंभिक), औद्योगिक-व्यावसायिक स्कूलों, व्यापक स्कूलों और विशेष व्यावसायिक स्कूलों में विभाजित हैं। कानून द्वारा यह आवश्यक है कि इस प्रकार के सभी स्कूलों में शैक्षणिक, व्यावसायिक, कलात्मक और अध्ययन के सामान्य कार्यक्रमों का समन्वय रहे। शिक्षा के इस स्तर के बारे में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि छात्र अपनी शिक्षा को कितनी तेजी से या धीमी गति से समाप्त करते हैं, इस पर एक हद तक उनका नियंत्रण होता है। प्रत्येक अवधि में निश्चित संख्या में पाठ्यक्रम इकाइयाँ उपलब्ध हैं। उन पाठ्यक्रम इकाइयों के भीतर पाठ्यक्रम क्रेडिट की एक निश्चित संख्या है।

विश्वविद्यालय स्तर

आइसलैंड में उच्च माध्यमिक शिक्षा पूरी करने वाला कोई भी व्यक्ति विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए आवेदन कर सकता है। चिकित्सा और दंत-चिकित्सा जैसे कुछ पाठ्यक्रमों के अपवाद के साथ, आइसलैंड विश्वविद्यालय उन सभी छात्र आवेदकों को प्रवेश देने के लिए बाध्य हैं जिनके पास उच्च माध्यमिक डिप्लोमा है। आइसलैंड के विश्वविद्यालय हर साल सैकड़ों विदेशी छात्रों को आकर्षित करते हैं और कई पाठ्यक्रम अंग्रेजी में पढ़ाए जाते हैं। देश आइसलैंडिक भाषा और साहित्य, हिमनद विज्ञान (ग्लेशियोलॉजी) और भू-विज्ञान में बेहतरीन शैक्षणिक कार्यक्रमों के लिए जाना जाता है। आइसलैंड में आठ उच्च शिक्षा-संस्थान हैं, जिनमें से सबसे बड़ा आइसलैंड विश्वविद्यालय है, जिसकी स्थापना 1911 में हुई थी। कुछ अति-विशिष्ट पाठ्यक्रमों को छोड़कर, अधिकांश पारंपरिक शैक्षणिक कार्यक्रम आइसलैंड में उपलब्ध हैं। कई आइसलैंडर्स अपनी विश्वविद्यालय शिक्षा का कम-से-कम कुछ हिस्सा विदेशों में भी प्राप्त करते हैं। **राज्य विश्वविद्यालयों में कोई शिक्षण शुल्क नहीं है** (हालांकि पंजीकरण शुल्क हैं), और छात्र-ऋण जीवन व्यय और स्कूल सामग्री को कवर करने के लिए सस्ती दरों पर उपलब्ध हैं, जिन्हें काफी लम्बे समय तक चुकाने की छूट है। (आप 65 की उम्र तक इन्हें चुकाने के लिए स्वतन्त्र हैं)।

जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा अनिवार्य शिक्षा के स्तर से आगे उच्च माध्यमिक और विश्विद्यालयी शिक्षा ग्रहण करता है। 2019 के आंकड़ों के अनुसार 20-24 आयु वर्ग के लोगों में उच्च माध्यमिक स्तर पर 59% पुरुष और 75% स्त्रियां दाखिल थीं। जबकि विश्वविद्यालय के स्तर पर इस आयु वर्ग में 42% पुरुष और 65% स्त्रियां शिक्षा ग्रहण

कर रहीं थीं। आइसलैंड की शिक्षा-प्रणाली बहुत लचीली है। हर स्तर पर पाठ्यक्रम और अध्ययन कार्यक्रम को लेकर शिक्षण संस्थानों को काफी स्वायत्तता हासिल है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि शिक्षा हर स्तर पर राज्य की ज़िम्मेदारी है और अधिकतर मुफ्त है।

(लेखक शिक्षा मामलों के जानकार, स्वतंत्र टिप्पणीकार और जाने-माने साहित्य-आलोचक हैं|)

*****

कनाडा की औपनिवेशिक नस्लवादी शिक्षा की क़ब्रगाहों से आती बच्चों की चीख़ती गवाहियाँ

फ़िरोज़

मई के अंतिम सप्ताह में कनाडा के दक्षिणी ब्रिटिश कॉलंबिया के कामलूप्स शहर में देश के सबसे बड़े रहे रिहाइशी स्कूल के प्रांगण में एक जाँच के दौरान प्रारम्भिक तौर पर 215 आदिवासी बच्चों की अचिन्हित कब्रों की खोज का ऐलान किया गया। आदिवासी समूह फ़र्स्ट नेशन की प्रमुख रोज़ैन कैसीमिर ने बताया कि इनमें 3 साल की उम्र तक के बच्चे शामिल थे। अभी और बच्चों के अवशेषों का पता लगने की आशंका है क्योंकि स्कूल के पूरे कैंपस की जाँच नहीं हुई है। नैशनल सेंटर फ़ॉर ट्रुथ ऐंड रिकन्सीलिएशन के कार्यकारिणी निदेशक के अनुसार 50 बच्चों की शिनाख़्त कर ली गई है। आदिवासी लोगों के लिए यह खोज अप्रत्याशित नहीं थी। इन स्कूलों से पढ़े हुए लोग बरसों से स्कूलों की नस्लवादी संस्कृति और हिंसा के बारे में बात करते आ रहे थे मगर उनके बयानों को औपचारिक रूप से महत्व नहीं दिया जा रहा था। यह खोज पश्चिमी कनाडा में पिछले कई वर्षों से जारी पड़ताल का पहला ठोस नतीजा थी। इस ख़बर के सार्वजानिक होने पर कनाडा में देशव्यापी गुस्सा फ़ैल गया। लोगों ने गुस्से और दुःख का इज़हार अलग-अलग तरीक़ों से किया, जिनमें सार्वजनिक स्थलों पर यादगार प्रतीक बनाया जाना भी शामिल था। कनाडा में राष्ट्रीय ध्वज को आधा नीचे उतारा गया और कनाडा की संसद के सामने बच्चों के जूतों, चप्पलों, सैंडिलों को प्रदर्शित करके यादगार प्रतीक बनाया गया। इस त्रासद खोज के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ और ह्यूमन राइट्स वॉच जैसी संस्थाओं ने भी बयान जारी किए हैं।

बच्चों के अवशेषों का पता घोषणा के कुछ दिन पहले राडार तकनीकी की मदद से लग चुका था। दफ़न स्थलों की सन् 2000 के शुरुआती वर्षों से खोज चल रही थी। कनाडा के आदिवासी नेतृत्व व कार्यकर्त्ताओं की आशंका है कि यह संख्या अभी और बढ़ेगी। इन स्कूलों में हज़ारों बच्चों की मौते हुईं और इन्हें अनाम लावारिस क़ब्रों में दफ़ना दिया गया। जबकि आज तक इतिहास में इस बारे में कोई पक्के आंकड़े नहीं हैं, आदिवासी संगठनों का इतिहास को खंगाल कर सामने लाने का अभियान इस ख़ालीपन को भरने की कोशिश कर रहा है।

1890 से 1969 तक चले इस स्कूल में किसी भी एक समय में क़रीब 500 तक बच्चे अपने परिवारों से सैकड़ों किलोमीटर दूर रहकर पढ़ते थे। 1969 में सरकार ने स्कूल का संचालन चर्च से अपने हाथ में ले लिया और 1978 में इसे पूरी तरह से बंद कर दिया गया। 1969-78 तक ये स्थानीय स्कूलों के बच्चों के रिहाइशी स्थल के रूप में इस्तेमाल हुआ। इस घोषणा के बाद देश के तमाम पुराने (बंद हो चुके) रिहाइशी स्कूलों के प्राँगणों में बच्चों की अनाम क़ब्रों की खोज की माँग तेज़ हो गई है।

19वीं सदी के अंतिम वर्षों में कनाडा सरकार ने संदेहास्पदक संधियाँ करके आदिवासी ज़मीनों पर कब्ज़ा जमाया और उनके लिए थोड़ी बहुत ज़मीन संरक्षित कर दी। 1880 के दशक में आदिवासियों के प्रति हिंसा की अगली कड़ी में रिहाइशी स्कूलों की शुरुआत की गई। ये सरकारी स्कूल कनाडा के आदिवासी लोगों के सांस्कृतिक समावेशन की नीति का हिस्सा थे जिसने आदिवासी संस्कृतियों व भाषाओं को तहस-नहस कर डाला। आदिवासियों को घोषित रूप से सभ्य बनाकर कनाडा की तथाकथित मुख्यधारा में समाहित करने के इस शिक्षाई अभियान के पीछे गोरी चमड़ी की नस्लीय श्रेष्ठता का भाव काम कर रहा था। कनाडा के इन 130 इंडियन रेज़िडेंशियल स्कूलों में से आख़िरी स्कूल को 1996 तक चलाया गया। इन स्कूलों में फ़र्स्ट नेशन, मेटिस और इनुइट आदिवासी समूहों के डेढ़ लाख़ बच्चों को जबरन उनके परिवारों से अलग करके डाला गया था। 1920 के दशक में जब इन स्कूलों में बच्चों की उपस्थिति अनिवार्य कर दी गई तो स्कूल नहीं भेजने पर अभिभावकों को जेल तक की सज़ा देने का प्रावधान रखा गया था। परिवारों से भेंट और संपर्क तोड़ने के लिए इन स्कूलों को जानबूझकर आदिवासी रिहाइशों से बहुत दूर बनाया जाता था। आदिवासी समूहों की कई पीढ़ियों को अपनी ज़बानें छोड़कर अंग्रेज़ी व फ्रेंच बोलने और इसाइयत अपनाने को मजबूर किया गया। इन स्कूलों के संचालन में चर्चों की मुख्य भूमिका थी। आदिवासियों के अनुसार औपनिवेशिक सरकार द्वारा अपनाई गई इस शिक्षा नीति का उद्देश्य बच्चों के आदिवासी मूल को मिटाना था।

ट्रुथ ऐंड रिकन्सीलिएशन कमीशन द्वारा 2015 में जारी 4000 पृष्ठों की रपट में इसे सरकार के नेतृत्व में अंजाम दी गई सांस्कृतिक नरसंहार की नीति क़रार दिया गया। रपट के अनुसार इस क्रूरू नीति में स्कूल प्रशासन, चर्च व सरकार, सबकी संलिप्तता थी। स्कूलों के ख़राब हालात व बच्चों की बुरी सेहत सरकार द्वारा ख़र्चा कम करने का परिणाम था। अक़सर परिवारों से झूठ बोला गया कि उनके बच्चे भाग गए थे या ग़ायब हो गए थे। 1960 के दशक तक अक़सर बच्चों के शरीर परिवारों को लौटाए नहीं जाते थे। यहाँ तक कि स्कूल प्रशासन और सरकार के बीच हुए पत्र व्यवहार में बच्चों के अंतिम संस्कार के ख़र्चे को वहन करने को लेकर भी पल्ला झाड़ने के संकेत मिलते हैं। कई बच्चे शारीरिक और यौन उत्पीड़न के चलते इन स्कूलों से भाग जाते थे, जबकि कई बीमारी, दुर्घटना या लापरवाही का शिकार हो जाते थे। शोषण, अपमान और तिरस्कार ने कई बच्चों-बच्चियों को आत्महत्या करने पर भी मजबूर किया। बच्चों में कुपोषण आम बात थी। महामारियों के दौरान संक्रमण से भी इन स्कूलों में कई बच्चों की मौतें हुईं। इन स्कूलों के बच्चों की मौत का दर 1945 में कनाडा के बाक़ी बच्चों से 5 गुना और 1960 के दशक में दो गुना था। 2015 के एक अनुमान के अनुसार इन स्कूलों में क़रीब 6000 बच्चों की मौत हुई जिनमें से लगभग 4000 की शिनाख़्त हो चुकी है। ट्रुथ ऐंड रिकन्सीलिएशन कमीशन के भूतपूर्व अध्यक्ष मरे सिंक्लेयर के अनुसार मरने वाले बच्चों की संख्या 10,000 से कहीं ज़्यादा हो सकती है। कनाडा के आदिवासी नेतृत्व ने इस त्रासद इतिहास को उनके समुदायों की नशाख़ोरी, शराब की लत जैसी परेशानियों के लिए ज़िम्मेदार माना है।

आयोग ने 2015 में जो रपट जारी की उसमें 94 माँगें/आह्वान शामिल थीं। इनमें स्कूल विद्यार्थी मृत्यु रजिस्टर तैयार करना व रिहाइशी स्कूलों की क़ब्रगाहों की एक ऑनलाइन रजिस्ट्री तैयार करना शामिल है। प्रधानमंत्री त्रुदू ने इन सभी पर क़दम उठाने का वायदा किया था, हालांकि आदिवासी संगठन सरकार द्वारा उठाए गए क़दमों व उनके लिए आवंटित राशि से संतुष्ट नहीं हैं। सरकार पर सभी 130 स्थलों की पड़ताल करने का दबाव बढ़ रहा है। इस प्रसंग में कैथोलिक चर्च द्वारा सार्वजानिक माफ़ी माँगने की माँग भी बढ़ी है। यूनाइटेड, ऐंग्लिकन व प्रेसबायटेरियन चर्चों ने 1980 व 1990 के दशकों में इन स्कूलों में आदिवासी बच्चों के साथ हुए अमानवीय व्यवहार में अपनी अपनी भूमिका को स्वीकारते हुए माफ़ी माँगी थी। 2008 में कनाडा सरकार ने आदिवासियों के प्रति इस ऐतिहासिक क्रूरता के लिए संसद में माफ़ी माँगी थी।

ब्रिटिश कॉलंबिया शिक्षक संघ की अध्यक्षा टेरी मूरिंग के अनुसार इस खोज के बाद ब्रिटिश कॉलंबिया के 45,000 पब्लिक स्कूल शिक्षकों की यूनियन ने अपने सदस्यों को इन 215 बच्चों की याद में संतरी रंग पहन कर आने को और आदिवासी समुदायों के समर्थन में सशरीर सार्वजनिक बयान प्रदर्शित करने को कहा। आदिवासी समुदायों के साथ एकजुटता ज़ाहिर करने के बयान के तहत यूनियन ने सभी स्कूली ज़िलों को अपने झंडे आधा नीचे उतारने और सप्ताहभर शिक्षकों को स्कूल भवन में सुबह के समय एक साथ प्रवेश करने को कहा। हालाँकि, कनाडा के आदिवासी समुदायों व कार्यकर्ताओं में इस बात को लेकर फ़िलहाल एक राय नहीं है कि इन स्कूलों के भवनों को नस्लीय क्रूरता के इतिहास और उनकी यातना की गवाही के रूप में ज़िंदा रखा जाए या असहनीय पीड़ा से बार-बार गुज़रने से बचने के लिए ढहा दिया जाए। कुछ भी हो, यह तय है कि जब तक जाँच-पड़ताल पूरी नहीं हो जाती है, तब तक कम-से-कम क़ानूनी कार्रवाई के मद्देनज़र इन स्थलों से छेड़छाड़ नहीं की जाएगी।

अन्य संदर्भ व पाठ

हमारी फ़िक्र का एक सबब ये भी होना चाहिए कि जिस तरह नाज़ी व फ़ासीवादी तंत्र में 'कलाकारों', 'बुद्धिजीवियों' से लेकर 'सामान्य', 'शरीफ़' नागरिकों की भागीदारी एक हताश-निराश करने वाली परिघटना रही, कुछ उसी तरह की भूमिका कनाडा के इस क्रूर इतिहास में शिक्षकों और चर्च के कर्मियों द्वारा निभाई गई। कनाडाई शिक्षा व्यवस्था का ये इतिहास एक बार फिर यह दिखाता है कि राजकीय-धार्मिक सत्ता शिक्षा तंत्र में हिंसक तत्वों का इस्तेमाल करती आई है। गोरी चमड़ी का नस्लवाद इस हिंसा को और ज़्यादा क्रूरता से भर देता है। दुनियाभर के औपनिवेशिक संदर्भों में ये बात बार-बार ज़ाहिर हुई है कि शिक्षा व्यवस्था को दमनकारी ताक़तों के वर्चस्व को क़ायम रखने के लिए माध्यम बनाया गया है। 'पिछड़े' समुदायों को सभ्य बनाने के नस्लवादी दर्शन ने इस हिंसा पर एक नैतिकतावादी लीपापोती करने का काम किया। इसका मतलब यही निकलता है कि जब तक शिक्षा तंत्र - और अंततः आर्थिक-राजनैतिक सत्ता - पर दमनकारी ताक़तों का शिकंजा है, तब तक शिक्षा के नाम पर स्कूलों की संस्कृति सार्वभौमिक या स्वाभाविक रूप से उदार नहीं हो सकती। इसका निरपेक्ष नहीं होना ही इसे द्वंद्व और संघर्ष का स्थल बनाता है।

यह भी ग़ौरतलब है कि आधुनिक काल की इतनी बड़ी त्रासदी इतने समय से हमारी आँखों और ज़हन से ओझल रही। बल्कि यह कहना ज़्यादा सही होगा कि इसे ओझल रखा गया। राजकीय व्यवस्था की कार्यवाहियों का इतनी बारीकी से दस्तावेज़ीकरण करने वाला निज़ाम इन हज़ारों बच्चों की ज़िंदगियों और उसी की हाथों हुई इनकी मौतों को अदृश्य कर देता है। इससे इन बच्चों और उनके समुदायों की स्थिति के बारे में तो पता चलता ही है, निज़ाम के चरित्र के बारे में भी बहुत कुछ साफ़ हो जाता है।

चाहे वो ऑस्ट्रेलिया के आदिवासियों के साथ हुआ निर्मम व्यवहार हो या अमरीकी आदिवासियों का 'रिसर्व्ज़' के नाम पर महज़ 2% ज़मीन पर समेट दिया जाना, औपनिवेशिक शिक्षा की बदनीयती का जीता-जागता सबूत ये है कि जिस तथाकथित मुख्यधारा में समाहित करने और सभ्यता/विकास के नाम पर ये सब किया गया, आर्थिक ग़ैर-बराबरी की चौड़ी होती खाई उसे मुँह चिढ़ा रही है। इस नीति ने आदिवासी समुदायों को विपन्न भी बनाया और उनका सांस्कृतिक संहार भी किया। ये आदिवासियों की ज़मीन और पहचान के ख़िलाफ़ दोतरफ़ा हमला था।

भारत के संदर्भ में भी औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में कई आदिवासी समुदायों को आपराधिक जनजाति क़रार देकर उन्हें निरंतर राजकीय दमन, बेदख़ली और निगरानी के हवाले कर दिया गया। हम शिक्षा व्यवस्था के ज़रिये आदिवासी समुदायों को निशाना बनाए जाने के भी गवाह हैं। एकलव्य की ज़ालिम और शातिराना बेदख़ली के

मिथकीय उदाहरण से लेकर आधुनिक शिक्षा तंत्र के बारीक सांस्कृतिक संहार तक, आदिवासी अस्मिता को हाशिये पर डालने का एक लंबा इतिहास है। 'एक राष्ट्र-एक भाषा' के सूत्र में निहित हिंसा हो या आदिवासी बहुल इलाक़ों में बनाए गए आश्रम स्कूलों की बदइंतज़ामी के क़िस्से, भारतीय शिक्षा व्यवस्था में बसी मनु-मैकालेवाद की संयुक्त जकड़न आदिवासी समुदायों के अधिकारों के लिए ख़तरा है। भारत के अभिजात अथवा समावेशी स्कूलों में भी आदिवासी बच्चों द्वारा अपनी भाषाओं के इस्तेमाल पर प्रतिबंध के उदाहरण सामने आते रहे हैं। दूसरी तरफ़, आदिवासी इलाक़ों में बड़ी संख्या में आरएसएस या उसकी सहयोगी संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे एकल विद्यालयों में बच्चों पर 'हिंदू' व ब्राह्मणवादी संस्कृति थोपने की मुहिम ने हाल के वर्षों में ज़ोर ही पकड़ा है। कुल मिलाकर, चाहे वो मिशनरी स्कूलों का हस्तक्षेप रहा हो, आदिवासियों को हिंदुत्व में समाहित करने की नज़र से चलाए गए वनवासी कल्याण आश्रम स्कूल या कॉरपोरेट संस्थाओं के तथाकथित परोपकारी स्कूल, इन सबने आदिवासी पृष्ठभूमियों के बच्चों पर अजनबी ज्ञान लादने, उनकी भाषाएँ व संस्कृतियाँ मिटाने और क्रूर अनुशासन थोपने का ही काम किया है। इसमें बाल, पहनावे, साज-श्रृंगार व नामों जैसी शरीर-व्यक्तित्व से जुड़ी नितांत निजी व सामुदायिक पहचानों का निषेध तथा उनके बदले वर्चस्वशाली पहचानों को थोपना एक मुख्य औज़ार रहा है। इन सबके बावजूद आदिवासी पहचान की गरिमा को जिलाए रखने के लिए प्रतिरोध भी तेज़ हुए हैं। इनमें अपनी भाषा, प्रतीक, पर्व, इतिहास को दोबारा खोजने और उन्हें दर्ज करने के प्रयास रहे हैं, तो समावेशन के नाम पर आदिवासी संस्कृति को हाशिए तथा दोयम दर्जे पर डालने की प्रक्रियाओं के प्रति बढ़ता इंकार भी शामिल है। झारखंड में आदिवासी समुदायों द्वारा ख़ुद को 'हिंदू' न कहकर, अपनी धार्मिक पहचान को 'सरना' घोषित करने का आह्वान इसी का ताज़ा उदाहरण है।

अंत में एक टिप्पणी ज़ालिम द्वारा मृत शरीर के साथ किए जाने वाले सुलूक़ पर। जो व्यवहार औपनिवेशिक कनाडाई सत्ता ने आदिवासी बच्चों के मृत शरीरों के साथ किया, एक मायने में वो न तो भगत सिंह के ख़ुफ़िया अंतिम संस्कार से अलग था, और न ही कोरोना-महामारी की दूसरी लहर में नदियों के हवाले कर दी गई अनाम लाशों से जुदा। जसिंता केरकेट्टा के शब्दों में, 'वो इंतज़ार कर रहे हैं हमारे सभ्य होने का; हम इंतज़ार कर रहे हैं उनके इंसान होने का!' मासूमों, क्रांतिकारियों की जान ले लेने के बावजूद ज़ालिम को एक डर सताता है। चाहे भगत सिंह की कालजयी इंक़लाबी प्रेरणा हो या कनाडा व दुनियाभर के आदिवासी समुदायों के बच्चों की गूँजती गवाहियाँ, ज़ुल्म कटघरे में खड़ा किया जाता रहेगा और उसके सर पर हमेशा इंसाफ़ की तलवार लटकती रहेगी।

नोट: इस रपट के लिखे जाने के दिन, 25 जून को, कनाडा के एक और प्रान्त सस्कैचवन से आदिवासी बच्चों के एक पुराने व बंद किए जा चुके बोर्डिंग स्कूल के प्राँगण से 750 से ज़्यादा आदिवासी बच्चों की पुरानी अनाम क़ब्रों की खोज की ख़बर आई।

*****

अ.भा.शि.अ.मं. द्वारा 9 अप्रैल 2021 को दिल्ली में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के ख़िलाफ़ आयोजित विद्यार्थी एवं युवा संगठनों के महा-सम्मेलन की रपट

महा-सम्मेलन का ब्यौरा

दिनांक और समय: 9 अप्रैल 2021, सुबह 9:30 से शाम 7:00

स्थान: जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय युवा केंद्र, नारायण दत्त तिवारी भवन, 219, दिन दयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली - 110002

पृष्ठभूमि

मई 2016 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (राशिनी, जो अंततः जुलाई 2020 में सामने आई) के बनने की शुरुआती घोषणा से ही अभाशिअमं विभिन्न चरण के दस्तावेज़ों व प्रक्रियाओं का बारीक अध्ययन तथा तीखी आलोचना करता आया था। ये प्रतिक्रियाएँ मंच के आह्वानों व कार्यक्रमों के केंद्र में रहीं। कोरोना-लॉकडाउन की आपातकालिक परिस्थितियों की आड़ में इसे अंतिम रूप देकर सरकार द्वारा देश की जनता पर थोपा गया। इस दौरान भी अभाशिअमं ने लगातार आपसी व सार्वजनिक चर्चाएँ आयोजित करते हुए जनता को इसके ख़तरों से आगाह कराने का काम जारी रखा। उदाहरण के लिए, इस सिलसिले में अभाशिअमं के आह्वान पर जनवरी 2020 में राशिनी की (उस वक़्त के प्रारूप की) प्रतियाँ जलाई गईं; राशिनी 2020 के संदर्भ में विश्व-बैंक की स्टार्स परियोजना, सामाजिक न्याय व भाषा जैसे मुद्दों पर कई वेबिनार आयोजित किए गए तथा राशिनी 2020 को ख़ारिज करने के लिए सोशल मीडिया पर कई अभियान आयोजित किए गए। इसके अतिरिक्त, सदस्य व साथी संगठनों द्वारा अपने तईं कई अन्य प्रतिरोध कार्यक्रम भी आयोजित किए गए।

इसी सिलसिले में, नीति के जारी होने के बाद, पिछले वर्ष मंच ने एक समिति को इस नीति पर एक विस्तृत आलोचना तैयार करने का काम भी सौंपा। समिति द्वारा एक पुस्तिका तैयार की गई। फ़िलहाल अंग्रेज़ी में आई लगभग 80 पृष्ठ की इस पुस्तिका में मंच ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बहिष्करण व गुलामी के अजेंडा को रेखांकित करते हुए, संविधान, सामाजिक न्याय व शिक्षा को पुनः प्राप्त करने का आह्वान किया है। इसके साथ ही, इसी विषय पर हिंदी में 8 पृष्ठ की एक पुस्तिका भी तैयार की गई जिसमें नीति के ख़िलाफ़ प्रमुख आपत्तियों को दर्ज किया गया है।

इन आपत्तियों व आलोचनाओं का सारांश यह है कि राशिनी सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था पर हमला है और इसलिए विद्यार्थियों, विशेषकर वंचित व हाशियाकृत वर्गों से आने वालों, के हितों के विरुद्ध है; यह नीति संविधान के सामाजिक न्याय के उसूल व प्रावधानों को निशाना बनाती है; संघीय ढाँचे व संस्थानों की स्वायत्तता को ख़त्म करती है; केंद्रीकरण द्वारा ब्राह्मणवादी-मनुवादी संस्कृति को बढ़ावा देती है; एक तरफ़ इसे कॉरपोरेट हित साधने के लिए वैश्विक पूँजी के इशारों पर लाया जा रहा है, दूसरी तरफ़ यह आरएसएस की साम्प्रदायिक, जातिवादी व स्त्री-विरोधी विचारधारा को थोपने का काम करेगी; इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आपातकालिक स्थितियों का निर्लज्ज फ़ायदा उठाते हुए, इसे बिना किसी लोकतांत्रिक सलाह-मशविरे के व न्यूनतम प्रक्रियाओं की भी अवहेलना करके लाया गया है।

तात्कालिक ज़रूरत एवं तैयारी

कोरोना-लॉकडाउन के संदर्भ में एक ओर बहुसंख्य विद्यार्थियों, युवाओं व आमजन को शिक्षा, स्वास्थ्य व आजीविका के घोर संकट में डाल दिया गया था, दूसरी ओर सरकार द्वारा इसकी आड़ में ऑनलाइन माध्यम जैसे जन- व शिक्षा-विरोधी निर्णय लादे जाते रहे। स्वास्थ्य की चिंताओं व प्रशासनिक पाबंदियों के चलते युवा तथा विद्यार्थी संगठनों द्वारा सड़क पर उतर कर इस नीति का विरोध करने की परिस्थितियाँ भी नहीं बन रही थीं। सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति (राशिनी) 2020 को तेज़ गति से थोपने करने और पैंतरेबाज़ी अपनाकर शैक्षिक संस्थानों को इसके प्रावधानों को अगले सत्र से ही अपनाने को मजबूर करने के संदर्भ में मंच ने इसे रोकने के लिए एक व्यापक कार्रवाई का कार्यक्रम (प्रोग्राम ऑफ़ ऐक्शन) बनाने की ज़रूरत शिद्दत से महसूस की।

उपरोक्त संदर्भों व उद्देश्यों के तहत, 18 फ़रवरी 2021 को हुई मंच की एक आंतरिक बैठक में दिल्ली में छात्रों व युवाओं का एक महा-सम्मेलन आयोजित करने का प्रस्ताव रखा गया था। (उस वक़्त इसको मार्च में आयोजित करने का विचार पेश किया गया था।) इस उद्देश्य से मंच ने मार्च के पहले हिस्से में अपने साथी व सदस्य संगठनों से अपील जारी की कि वो जल्द-अस-जल्द राशिनी का अपने-अपने स्तर पर विरोध करें तथा साथ आकर एक आंदोलन का निर्माण करें। संगठनों के साथ महा-सम्मेलन की तैयारी की पहली बैठक 13 मार्च को हुई। तैयारी की सभी बैठकों व महा-सम्मेलन को मिश्रित स्वरूप का रखा गया - मुख्यतः सशरीर उपस्थिति पर आधारित, लेकिन स्थल पर न आ सकने वाले साथियों के लिए ज़ूम मंच से दूरस्थ भागीदारी के विकल्प के साथ। महा-सम्मेलन को फ़ेसबुक पर सीधे प्रसारित करने तथा रिकॉर्डिंग को बाद में यूट्यूब पर अपलोड करने की योजना थी, मगर तकनीकी कारणों के चलते इसे अंतिम समय पर अंजाम नहीं दिया जा सका। इस बैठक में महा-सम्मेलन के लिए 9 अप्रैल की तारीख़ तय की गई। इसी बैठक में आयोजन हेतु एक समन्वय समिति बनाई गई जिसमें प्रत्येक संगठन से एक प्रतिनिधि लेने का सूत्र अपनाया गया। महा-सम्मेलन को लेकर यह समझ साझा हुई कि लोगों के सामने राशिनी के ख़तरों को चिन्हित करते हुए, इसके ख़िलाफ़ कार्रवाई का एक साझा कार्यक्रम (प्रोग्राम ऑफ़ ऐक्शन) विकसित करना और वैकल्पिक शिक्षा नीति के लिए एक देशव्यापी आंदोलन खड़ा करना बेहद ज़रूरी है। तैयारी की दूसरी, तीसरी व चौथी बैठकें क्रमशः 17 मार्च, 26 मार्च व 3 अप्रैल को हुईं। इन बैठकों के दौरान कार्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित की गई, ज़िम्मेदारियाँ बाँटी गईं और, अन्य प्रस्तावों पर विचार करने के बाद, दीन दयाल उपाध्याय मार्ग पर गाँधी शांति प्रतिष्ठान के पास स्थित नारायण दत्त तिवारी भवन में जवाहरलाल नेहरू युवा केंद्र को स्थल के रूप में तय किया गया। महा-सम्मेलन में दिल्ली व देशभर से 40 संगठनों ने शिरकत करने की प्रतिबद्धता जताई और इनके नाम आयोजन से जुड़े विभिन्न दस्तावेज़ों में दर्ज किये गए। हालाँकि महा-सम्मेलन का प्रारंभ होते-होते प्रतिभागी संगठनों की संख्या 45 तक पहुँच गई थी। मंच की ओर से 30 मार्च को राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्यों, साथी व सहयोगी संगठनों तथा समर्थकों से महा-सम्मेलन के आयोजन में आर्थिक सहयोग करने की अपील जारी की गई जिसमें आयोजन की पृष्ठभूमि, ज़रूरत, उद्देश्यों व संभावित ख़र्चे (एक लाख रुपये) का ज़िक्र था। 7 अप्रैल को विद्यार्थियों, युवाओं, अभिभावकों व शिक्षकों के नाम एक निमंत्रण जारी किया गया। इस बीच सोशल मीडिया पर प्रचार के लिए पोस्टर, महा-सम्मेलन का एक पर्चा और प्रेस के लिए निमंत्रण भी जारी कर दिए गए।

रूपरेखा एवं कार्यक्रम का आयोजन

महा-सम्मेलन के कार्यक्रम की रूपरेखा सुबह 9 बजे से शाम 7 बजे तक की अवधि की बनाई गई। प्रतिभागियों के पंजीकरण व क्रांतिकारी सांस्कृतिक प्रस्तुतियों (9-9:30) के बाद प्रथम सत्र (9:30-10:45) में मंच के सांगठनिक सचिव डॉक्टर विकास गुप्ता का स्वागत वक्तव्य व मंच के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर जगमोहन सिंह का उद्घाटन वक्तव्य हुआ। चाय के बाद दूसरे सत्र (11-1:30) में संगठनों के प्रतिनिधियों ने राशिनी पर तथा आगे के रास्ते को लेकर अपनी बात रखी। किन्हीं अपरिहार्य कारणों से कार्यक्रम के समापन के समय उपस्थित न रह पाने के चलते FEDCUTA व DUTA अध्यक्ष प्रोफ़ेसर राजीब रे ने अपना [अंतिम] वक्तव्य दूसरे सत्र में प्रस्तुत किया। इसी कड़ी में महा-सम्मेलन में शिरकत कर रहे कुछ शिक्षक साथियों ने भी अपनी बात रखी। दोपहर के खाने के बाद वाले सत्र (2:30-4:30) में विद्यार्थी व युवा संगठनों की प्रस्तुतियों का सिलसिला जारी रहा। ये संगठन दिल्ली के विश्वविद्यालयों के अलावा, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, उत्तर-प्रदेश, ओडिशा, आंध्र-प्रदेश, तेलंगाना, महाराष्ट्र आदि राज्यों से थे। इस बीच मंच की प्रेसिडियम सदस्या प्रोफ़ेसर मधु प्रसाद द्वारा राशिनी के ख़िलाफ़ लाई गई अभाशिअमं की पुस्तिका 'नैशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020: अजेंडा ऑफ़ एक्सक्लूशन ऐंड एनस्लेवमेंट - रिक्लेम कॉन्स्टिट्यूशन, सोशल जस्टिस ऐंड एजुकेशन' का विमोचन किया गया। शाम की चाय के बाद अंतिम सत्र में तीनों दस्तावेज़ों - प्रस्ताव, कार्रवाई का कार्यक्रम व छात्रों के कर्तव्यों तथा अधिकारों का घोषणापत्र - के प्रारूपों को हिंदी व अंग्रेज़ी दोनों में सभा के सामने पढ़ा गया। इन दस्तावेज़ों पर विभिन्न संगठनों ने सभा के सामने अपनी प्रतिक्रिया व सुझाव पेश किए। (बाद में क्रांतिकारी युवा संगठन (केवाईएस) ने अपने सुझाव लिखित में भी भेजे।) संगठनों से मिली राय की रौशनी में दस्तावेज़ों को संशोधित करने की सहमति के साथ ही सभा में इन्हें सर्व-सम्मति से पारित किया गया।

संगठनों के वक्ताओं ने राशिनी 2020 को एक ऐतिहासिकता में रखते हुए इस बात को रेखांकित किया कि चाहे वो जातिगत भेदभाव पर भारतीय समाज हो या राज्य का रवैया, शिक्षा व्यवस्था व नीतियाँ हमेशा से कमज़ोर को बेदख़ल करती आई हैं। यह एक तरफ़ मनु के विधान और दूसरी तरफ़ मैकॉले के सूत्र का ही असर है कि संविधान में दर्ज सामाजिक न्याय के उसूल तथा समान स्कूल व्यवस्था के आदर्श नीतियों में धूमिल होते गए हैं, मगर पैसों व सामाजिक प्रतिष्ठा की औक़ात पर टिकी तथा उसे मज़बूत करने वाली बहु-परती शिक्षा व्यवस्था फलती-फूलती गई है। शिक्षा पर सार्वजनिक ख़र्च कम करने, निजीकरण का रास्ता और तेज़ी से साफ़ करने, स्कूलों को बंद करने, वज़ीफ़े कमज़ोर करने, फ़ीस बढ़ाने की तैयारी करने जैसे उपायों से राशिनी 2020 वंचित वर्गों की बेदख़ली की रफ़्तार तेज़ करेगी। ज़ाहिर है कि इसे, कई अन्य जन-विरोधी क़ानूनों की तरह, कोरोना की आड़ में लाया गया और देश पर थोपा जा रहा है। यह एक तरह से शासक वर्ग द्वारा जनता के ख़िलाफ़ युद्ध का उद्घोष है। इस हमले के दो प्रमुख आधार स्तंभ व उद्देश्य हैं: सरकार की आर्थिक नीतियों व विश्व बैंक के दबाव से संचालित, शिक्षा में मुनाफ़े के विस्तार की तलाश करती वित्तीय पूँजी के हित; तथा मुट्ठीभर लोगों के वर्चस्व को क़ायम रखने के लिए हिंदू राष्ट्र के पुनरुत्थानवादी अजेंडे को लागू करना चाह रही आरएसएस सरीखी ताक़तें। इस तरह राशिनी 2020 को अन्य क्षेत्रों में लागू की जा रही आर्थिक नीतियों व ब्राह्मणवादी सांस्कृतिक अजेंडे के फ़ासीवादी गठजोड़ के आलोक में ही देखना होगा। राशिनी 2020 के तहत वोकेशनल कोर्स व कौशल-केंद्रित शिक्षा जहाँ एक ओर पूँजी के लिए सस्ते श्रमिक उपलब्ध कराएँगे, वहीं इसकी दक़ियानूसी पाठ्यचर्या से सांस्कृतिक रूप से सत्ता का वर्चस्व क़ायम रखने का काम लिया जाएगा। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अकादमिक रूप से निरर्थक किंतु व्यापार-

समर्थक ऑनलाइन पढ़ाई थोपने, केंद्रीकरण को बेतहाशा बढ़ाने, उच्च-शिक्षा संस्थानों की स्वायत्तता को ख़त्म करने व प्रतिरोध को रोकने के लिए तमाम यूनियनों के अधिकारों पर लगाम लगाने के हथकंडे अपनाये जा रहे हैं। प्रतिभागी संगठन इस बात को लेकर एकमत थे कि आगे का रास्ता भारत के सामाजिक न्याय के आंदोलनों, भगत सिंह जैसे क्रांतिकारियों व आज़ादी की लड़ाई की प्रगतिशील विरासत की प्रेरणा से ही होकर जाता है। इस कड़ी में आज के दौर के किसान आंदोलन के महत्व को रेखांकित करते हुए उससे एकजुटता बनाने पर ज़ोर दिया गया। चाहे वो इस आंदोलन द्वारा जन-मीडिया की एक समानांतर आवाज़ खड़ी करना हो या जन-समितियाँ बनाकर गाँव-गाँव पहुँच बनाना, शिक्षा के आंदोलन को इनसे सीख लेकर जनता के बीच जनता के तमाम तरह के संघर्षों से जुड़ने, उन्हें आगे ले जाने व आवाज़ देने के रचनात्मक प्रयास करने होंगे। इन जन-समितियों के काम व जनता के बीच सतत प्रचार-प्रसार से ही सत्ता के जुमलों का पर्दाफ़ाश हो सकेगा, तथा पढ़ने, समझने व लड़ने की प्रक्रिया अपने मुक़ाम पर पहुँच पाएगी। ऐसे कार्यक्रमों को विकेन्द्रित रूप से विभिन्न राज्यों में आयोजित करने की ज़रूरत भी महसूस की गई। ऐसे नाज़ुक मौक़े पर व कठिन परिस्थितियों में इस कार्यक्रम को आयोजित करने के लिए प्रतिभागी संगठनों ने अभाशिअमं की सराहना की और आगे भी आंदोलन में मज़बूती से शिरकत करने की प्रतिबद्धता जताई।

अभाशिअमं की ओर से कामरेड मृगांक ने धन्यवाद प्रस्ताव पेश किया। यह बताते हुए कि महा-सम्मेलन में 45 छात्र व युवा संगठनों ने भागीदारी की, उन्होंने जेएनयू व दिल्ली वि.वि. शिक्षक संघों के प्रतिनिधियों की शिरकत को भी दर्ज किया। उन्होंने आर्थिक सहयोग करने वाले तमाम साथियों, समन्वय समिति, अन्य संबद्ध समितियों, मीडिया कर्मियों व शेष सभी सदस्यों का आभार प्रकट किया।

इस पूरे कार्यक्रम के दौरान बीच-बीच में क्रांतिकारी सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ जारी रहीं। जैसा कि नियोजित था, ओडिशा, तेलंगाना, मुंबई आदि स्थानों से, कई संगठनों ने देश के अलग-अलग हिस्सों से ऑनलाइन माध्यम से अपनी बात रखी। महा-सम्मेलन में ऑनलाइन माध्यम से एक डाक्यूमेंट्री का प्रदर्शन भी किया गया। हॉल के बाहर, दोनों तरफ़, संगठनों के साहित्य स्टॉल लगे थे। मंच के साहित्य का स्टॉल भी सुबह से लगाया गया था जोकि काफ़ी लोकप्रिय रहा। इस महा-सम्मेलन में देशभर के कुल मिलाकर 48 छात्र-युवा संगठनों के लगभग 200 साथियों ने हिस्सा लिया। इनमें से 30 से अधिक संगठनों के प्रतिनिधियों ने मंच पर से अपनी बात रखी। हालाँकि, महा-सम्मेलन की सफलता का सही आँकलन तो आने वाले वक़्त में आंदोलन की दिशा, विस्तार और गति से ही चलेगा, फिर भी कुछ कारणों से इसकी कामयाबी को दर्ज माना जा सकता है। इसमें प्रमुख है कोरोना-लॉकडाउन की पाबंदियों व प्रशासनिक दमन की इतनी विषम परिस्थितियों में, वो भी इतने कम समय में, एक सशरीर कार्यक्रम को आयोजित कर पाना। इसका महत्व तब बढ़ जाता है जब हम देखते हैं कि चर्चाओं व प्रतिरोध के स्वर भी, सत्ता के लिए सुविधाजनक, ऑनलाइन-आभासी माध्यम तक सिकुड़ते जा रहे हैं। यक़ीनन, यह छात्र-युवा संगठनों के सहयोग व जज़्बे के बिना संभव नहीं था। साथ ही, यह महा-सम्मेलन आज केंद्र की तानाशाही के ख़िलाफ़ प्रतिरोध के प्रतीक और प्रेरणा के रूप में उभरे किसान आंदोलन के साथ जुड़ने में भी कामयाब रहा।

आंदोलन स्थलों पर अभाशिअमं ने किसानों के साथ जो एकजुटता प्रकट की है, उसी को आगे बढ़ाते हुए किसान आंदोलन के कार्यकर्ता भी इस महा-सम्मेलन में शामिल हुए। यह जुड़ाव निश्चित ही फ़ासीवादी हमलों के ख़िलाफ़ संघर्षरत व जनता के अधिकारों को समर्पित सभी जन-आंदोलनों को साथ लाने तथा मज़बूत करने का काम करेगा।

विद्यार्थियों एवं युवाओं के 42 संगठन जिन्होंने महा-सम्मेलन की चर्चा व तैयारी में शिरकत की थी और अपनी भागीदारी पहले-ही घोषित कर दी थी:

1.ALL INDIA REVOLUTIONARY STUDENTS ORGANIZATION (AIRSO);
2.ALL INDIA STUDENTS ASSOCIATION (AISA);
3.ALL INDIA STUDENTS FEDERATION (AISF);
4.AMBEDKAR PERIYAR PHULE STUDY CIRCLE (IIT BOMBAY), MAHARASHTRA;
5.ANUDANIT SHIKSHA BACHAO SAMITI (ASBS), MAHARASHTRA;
6.BAHUJANA VIDYARTHI SANGATHANA (BVS), KARNATAKA;
7.BHAGAT SINGH CHHATRA EKTA MANCH (BSCEM), DELHI;
8.BHAGAT SINGH CHHATRA MORCHA (BSCM), UTTAR PRADESH;
9.BHAGAT SINGH ORGANISATION OF STUDENTS (HARYANA);
10.BIHAR SHIKSHA ANDOLAN SANYOJAN SAMITI (BIHAR);
11.CHHATRA EKTA MANCH (CEM), (HARYANA);
12.COLLECTIVE (DELHI);
13.CONFLUENCE (PUNJAB);
14.DEMOCRATIC STUDENTS UNION (DSU);
15.DEMOCRATIC YOUTH FEDERATION OF INDIA (DYFI);
16.DISHA STUDENT ORGANIZATION, Delhi;
17.HARYANA STUDENTS FEDERATION, HARYANA;
18.INDIANS SOCIAL MOVEMENT (ISM), MAHARASHTRA;
19.INQUILABI CHATHRA MORCHA (U.P.);
20.JAGROOK NAGRIK MANCH (HARYANA);
21.JAN JAGRAN ABHIYAN (ODISHA);
22.KRANTIKARI YUVA SANGATHAN (KYS);
23.NAUJWAN EKTA MANCH (PUNJAB);
24.NAUJWAN SABHA (NANEOLA);
25.NORTHEAST SOLIDARITY (MIZORAM);
26.PINJRA TOD, Delhi;
27.PRAVIRTANKAMI CHHATRA SANGTHAN (PACCHAS);
28.PROGRESSIVE DEMOCRATIC STUDENTS UNION (PDSU), ANDHRA PRADESH
29.PROGRESSIVE DEMOCRATIC STUDENTS UNION (PDSU), DELHI;
30.PROGRESSIVE STUDENTS FRONT (PSF), HARYANA;
31.PROGRESSIVE YOUTH LEAGUE (PYL), TELANGANA;
32.PUNJAB RADICAL STUDENT'S UNION (PRSU), PUNJAB;
33.PUNJAB STUDENTS UNION (LALKAAR), PUNJAB;
34.PUNJAB STUDENTS UNION, PUNJAB;
35.SAMYAK VIDHYARTHI ANDOLAN (MAHARASHTRA);
36.SATYASHODHAK VIDHYARTHI SANGHTNA (MAHARASHTRA);
37.SHILLONG MANIPURI STUDENTS' UNION (MEGHALAYA);
38.STUDENT FOR SOCIETY (SFS), CHANDIGARH;
39.STUDENTS FEDERATION OF INDIA (SFI);
40.TAMILNADU STUDENT YOUTH FRONT (TAMIL NADU);
41.YOUTH FOR SOCIAL JUSTICE (YFSJ), DELHI;
42.YUVA MUNNADE (KARNATAKA);

छः संगठन जो महा-सम्मेलन के दिन शामिल हुए:

1. ALL INDIA YOUTH FEDERATION (AIYF)
2. PSF, HANSHI
3. DYAR-E-SHAUQ STUDENTS' CHARTER, JAMIA
4. REVOLUTIONARY CULTURAL FORUM (RCF)
5. AZAD YUVA SANGATHAN (AYS)
6. REVOLUTIONARY YOUTH ORGANISATION (RYO)

दो अन्य संगठन जिन्होंने सांस्कृतिक पेशकश की या जिनके प्रतिनिधि महा-सम्मेलन में शामिल हुए:

1. DASTAK
2. SANGWARI

****

महा-सम्मेलन के लिए वितरित पर्चा

लोकतांत्रिक एवं संघीय सलाह-मशविरे को दरकिनार करके महामारी की आपदा के दौरान लोगों पर थोपी गई, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, बराबरी के मौलिक अधिकार, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, संघवाद एवं सामाजिक विविधता आदि पर टिके हमारे संवैधानिक ढाँचे को पूरी तरह पलट देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एक नवउदारवादी व मनुवादी दस्तावेज़ है जोकि वैश्विक पूँजी तथा ब्राह्मणवादी ताक़तों के हित में शिक्षा और समाज में मौजूद ग़ैर-बराबरी को बेतहाशा बढ़ाएगा। यह हमारी सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था को कॉर्पोरेट तथा आरएसएस जैसे धुर-पुरातनपंथी संगठनों को सौंप देगी; और यह ग़रीब जनता तथा ऐतिहासिक रूप से दमित समूहों को श्रेष्ठ व समान स्तर की शिक्षा के बदले, घटिया स्तर के स्कूलों, दोयम दर्जे के विकल्पों तथा कौशल प्रशिक्षण तक सीमित कर देगी। हमारी आबादी का अधिकांश हिस्सा अनुसूचित जातियों, जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों, विकलाँग जनों, ट्रांसजेंडर, धार्मिक व भाषाई अल्पसंख्यकों, तथा ग्रामीण व शहरी ग़रीब जैसे विभिन वंचित तथा सामाजिक रूप से बहिष्कृत वर्गों, और इनमें भी विशेषकर स्त्रियों, से मिलकर बना है। यानी, हमारे देश के 85 से 90 प्रतिशत बच्चे व युवा इन हाशियाकृत समूहों से आते हैं।यह नीति इन 90% बच्चों व युवाओं को समतामूलक स्तर वाली पूर्ण-कालिक औपचारिक शिक्षा से बाहर धकेलकर और इन्हें घटिया स्तर की व प्रतिगामी शिक्षा के हवाले करके शोषणकारी बालश्रम व पारिवारिक काम के जातिगत बँटवारे को पुष्ट करते हुए देश के विकास को अवरुद्ध करेगी।

अनुच्छेद 246 (सातवीं अनुसूची) के तहत राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों को शिक्षा - जोकि समवर्ती सूची का विषय है - से संबद्ध वित्तीय, प्रशासनिक, अकादमिक तथा पाठ्यचर्यागत/शिक्षाशास्त्रीय विषयों के बारे में निर्णय लेने के संघीय अधिका रों को छीनकर यह नीति संविधान का घोर उल्लंघन करती है। यह नीति केंद्रीकृत नियामक संस्थाओं, केंद्रीकृत पात्रता शर्तों, राज्यों के विश्वविद्यालयों में केंद्रीकृत प्रवेश प्रक्रियाओं, राष्ट्रीय मूल्यांकन केंद्र के माध्यम से मूल्यांकन के केंद्रीकृत पैमानों, और यहाँ तक कि प्रारंभिक स्कूली शिक्षा में कक्षा 3, 5 तथा 8 में केंद्रीय स्तर पर समन्वित परीक्षणों को थोपती है (रा.शि.नी: 4.40 व 4.41)! केंद्रीकरण के प्रति ऐसा यंत्रवत जुनून पूर्व-प्राथमिक शिशु देखभाल व शिक्षा के केंद्रों से लेकर विश्वविद्यालयों के विभागों तक की बेशक़ीमती स्वायत्तता तथा भारत की ज्ञानमीमांसीय व भाषाई विविधता को ख़त्म कर देगा। सत्ता के इस केंद्रीकरण को डब्ल्यूटीओ-गेट्स के हुक्म के अनुसार 'एकल खिड़की मंज़ूरी' (सिंगल विंडो क्लीयरेंस) लागू करके शिक्षा में कॉरपोरेटीकरण व वैश्वीकरण की गति को बढ़ाने तथा ब्राह्मणवादी जातिवाद और पितृसत्तात्मक वर्चस्व में स्थित हिन्दू-राष्ट्र के संविधान-विरोधी अजेंडा एवं धार्मिक कट्टरता को तेज़ करने के लिए लाया जा रहा है। 14 साल तक के बच्चों के लिए, जिनमें 6 साल से कम उम्र के बच्चे भी शामिल हैं, 'मुफ़्त एवं अनिवार्य शिक्षा' पर पूरी तरह चुप्पी साध कर, यह नीति आज़ादी के आंदोलन के दौरान और उसके अलावा चले 100 साल से लंबे जन संघर्ष से हासिल कामयाबियों को मिट्टी में मिला देती है - वो मील के पत्थर जो न सिर्फ़ संविधान के मूल अनुच्छेद 45 में दर्ज थे, बल्कि जिन्हें सर्वोच्च अदालत के फ़ैसलों (मोहिनी जैन, 1992; उन्नीकृष्णन, 1993) ने मौलिक अधिकार घोषित किया था व जो संविधान के 86वें संशोधन, 2002 और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के रूप में संविधान में शामिल किये गए थे। यह नीति स्कूल कॉम्प्लेक्स के विचार को धूर्ततापूर्ण इस्तेमाल करते हुए सरकारी स्कूल की निजी स्कूल के साथ जोड़ी बनाने को प्रस्तावित करती है तथा सरकार पर दूर-दराज़ के इलाक़ों में 5 से 10 किलोमीटर या दुर्गम क्षेत्रों में इससे भी अधिक दूरी पर ही स्कूलों को खोलने की ज़िम्मेदारी डालती है। इस तरह यह नीति

शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 में वर्णित छात्र-शिक्षक अनुपात और स्कूलों के लिए निर्धारित 'मानदंड व मानकों' को कमज़ोर करती है।

क्यों विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों व युवाओं को ख़ासतौर से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की मुख़ालफ़त करनी चाहिए?

1. प्रवेश, भर्तियों व पदोन्नतियों में 'योग्यता को आधार' बनाने के अपने सिद्धांत पर अत्याधिक तरजीह देने और वर्तमान में उपलब्ध सभी वज़ीफ़ों को केंद्रीकृत करने के अपने प्रस्ताव के चलते, यह नीति वंचित तबक़ों को छात्रवृत्तियों, हॉस्टलों, सब्सिडी जैसे सामाजिक न्याय के वैधानिक प्रावधानों तथा प्रवेश, भर्तियों व पदोन्नतियों में आरक्षण के संवैधानिक प्रावधान को निशाना बनाती है। जिसे यह नीति 'योग्यता' क़रार देती है वह वर्ग, जाति, नस्ल, लिंग, धर्म, जन्म स्थान, भाषा और 'सामान्य शरीर' की धारणाओं पर टिके, पीढ़ियों से हस्तांतरित सामाजिक विशेषाधिकारों से निर्धारित होता है। अनुसूचित जातियों/जनजातियों/पिछड़े वर्गों/विमुक्त जनजातियों और धार्मिक व भाषाई अल्पसंख्यकों तथा तथाकथित उच्च-जातियों के विपन्न सदस्यों के लिए संविधान में परिभाषित सामाजिक न्याय को हटाकर सामाजिक रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी विशेषाधिकार प्राप्त 'योग्यता' की धारणा को नीति में स्थापित करना संविधान-विरोधी है।

2. यह नीति विश्वविद्यालयों का एक केंद्रीय स्तर पर नियुक्त 'बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स' के सामने आत्मसमर्पण कराती है। ये बोर्ड अकादमिक व कार्यकारिणी परिषदों की जगह लेते हुए, उच्च शिक्षा संस्थानों के स्वशासित कामकाज व विकास में चयनित शिक्षक संघों तथा विद्यार्थी संघों की लोकतांत्रिक भूमिका को पूरी तरह धूमिल कर देंगे। इसकी प्रबल संभावना है कि इन बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स में संघ परिवार के कैडर को भर दिया जायेगा। यह विश्वविद्यालयों पर आरएसएस के अजेंडा को थोपना सुनिश्चित करेगा।

3. यह नीति राष्ट्रीय प्रत्यापन परिषद (एनएसी) से संबद्ध स्वायत्तता की बहु-स्तरीय योजना की संकल्पना के ज़रिये सार्वजनिक विश्वविद्यालयों को ध्वस्त करती है। स्वायत्तता की बहु-स्तरीय योजना के तहत बेहतर एनएसी अंकों वाले कॉलेजों को विश्वविद्यालयी व्यवस्था छोड़ने को प्रोत्साहित किया जायेगा। नीति आयोग के 'इनपुट्स के महत्व को घटाकर मात्र आउटकम पर ज़ोर देने' के सूत्र के तहत शैक्षिक संस्थानों को मिलने वाले अनुदानों को प्रत्यापन से जोड़कर, यह नीति यह सुनिश्चित करती है कि केवल वित्त-संपन्न 'अभिजात' संस्थानों को बेहतर फ़ंड्स उपलब्ध कराये जायेंगे और राज्य/केंद्रशासित प्रदेशों द्वारा समर्थित संस्थानों की तरह, पहले-से ही वित्तीय संकट झेल रहे अधिकतर संस्थानों को तेज़ी से ख़त्म किया जायेगा।

4. यह नीति चार-वर्षीय स्नातक डिग्री कार्यक्रम को दोबारा शुरु करती है। नीति को इस उलटी दिशा में पलटने से सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े तथा तथाकथित उच्च-जातियों के आर्थिक रूप से वंचित वर्गों के अधिसंख्य विद्यार्थियों के लिए स्नातक डिग्री कार्यक्रम को पूरा करने का ख़र्चा बढ़ जायेगा। जबकि इस अधकचरे प्रावधान को उच्च वर्गों व दलक जातियों से आने वाले उन मुठ्ठीभर विद्यार्थियों की मदद के लिए लाया गया है जो अमरीकी विश्वविद्यालयों व कॉलेजों के चार-वर्षीय कोर्सों में अधिक सुगम प्रवेश पाना चाहते हैं, इससे उन बहुसंख्यक युवाओं को नुक़सान ही होगा जो या तो उच्च-शिक्षा के अगले चरण में प्रवेश की कामना रखते हैं या नौकरी पाना चाहते हैं।

5. इस नीति के तहत परा-स्नातक कार्यक्रम को एक वर्ष की अवधि तक सीमित कर दिया जायेगा और एमफ़िल कार्यक्रम को तो ख़त्म ही कर दिया जायेगा। नीति का यह प्रावधान विद्यार्थियों के शोध-आधार को काफ़ी हद तक कम कर देगा।

6. कोर्स में 'प्रवेश व निकास के वैकल्पिक बिंदुओं' के प्रावधान (11.5; 11.9) के ज़रिये - जिसे कि, भारत के संदर्भ या ज़रूरत से बेख़बर, अमरीका की नक़ल के रूप में लाया गया है - यह नीति ड्रॉपआउट्स या पुशआउट्स को वैधता प्रदान करेगी। भारत में ग़रीबी के स्तर और बेरोज़गारी को देखते हुए और हमारे उच्च-शिक्षा संस्थानों में सीमित स्थानों के मद्देनज़र, ये कोई 'विकल्प' नहीं होगा, बल्कि महज़ आर्थिक व जातिगत रूप से अभिजात तबक़ों को प्राप्त 'विलासिता' होगी। आर्थिक रूप से कमज़ोर तबक़ों से आने वाले विद्यार्थियों और विशेषकर स्त्रियों के लिए पहले निकास लेने व फिर वापस आकर अपने डिग्री कार्यक्रम को बढ़ी अवधि में पूरा करना अकल्पनीय है।

7. एक व्यापक छत्रछाया वाला भारत का उच्च शिक्षा आयोग (एचईसीआई), अपने चार स्तंभों के साथ - राष्ट्रीय उच्च शिक्षा नियामक परिषद (एनएचईआरसी), राष्ट्रीय प्रत्यापन परिषद (एनएसी), उच्च शिक्षा अनुदान परिषद (एचईजीसी) तथा, अंत में, सामान्य शिक्षा परिषद (जीईसी) - उच्च शिक्षा पर, वित्तीय, संकल्पनात्मक तथा प्रशासनिक, सभी स्तरों पर, केंद्रीय शिकंजे में एक अभूतपूर्व बढ़ोतरी करता है (18.2 से 18.11); पिछले नीति-निर्माताओं की कल्पना व वैधानिक पहुँच से कहीं-कहीं ज़्यादा। नीति में प्रस्तावित 'व्यवस्था-स्थापत्य शिल्प' के परिणामों को निम्नलिखित महत्वपूर्ण आयामों में चिन्हित किया जा सकता है:

(i) राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों को, संविधान के अनुच्छेद 246 के उल्लंघन में, उच्च-शिक्षा से जुड़े उनके अधिकारों व ज़िम्मेदारियों से वंचित कर दिया गया है;

(ii) विश्वविद्यालय डिग्री/डिप्लोमा/सर्टिफ़िकेट कोर्सों के लिएअपनी पाठ्यचर्या व पाठ्यक्रम, शिक्षाशास्त्र, मूल्यांकन पैमाने व प्रक्रियाएँ, अधिगम परिणाम व अकादमिक आदर्श तय करने की स्वायत्तता खो बैठेंगे। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि सामान्य शिक्षा परिषद एक राष्ट्रीय उच्च शिक्षा योग्यता ढाँचा तैयार करेगा जोकि राष्ट्रीय कौशल योग्यता ढाँचे से सामंजस्य रखेगा (18.6), जिसे कि ख़ुद कौशल भारत मिशन के अधीन बनाया जायेगा। यह एनएचईक्यूएफ़-एनएसक्यूएफ़, सार्वजनिक या निजी, सभी तरह के विश्वविद्यालयों पर बाध्य होगा, जोकि आज़ादी के बाद से भारत में विश्वविद्यालयों पर बाहरी नियंत्रण को एक अभूतपूर्व स्तर पर ले जायेगा!

8. यह नीति देशभर के सभी विश्वविद्यालयों और कॉलेजों तथा व्यावसायिक संस्थानों में प्रवेश के लिए नैशनल टैस्टिंग एजेंसी द्वारा आयोजित एकल प्रवेश परीक्षा प्रस्तावित करती है। मूल्यांकन की दोनों केंद्रीकृत एजेंसियाँ, स्कूल स्तर पर 'परख' व उच्च-शिक्षा में एनटीए, मिलकर न सिर्फ़ कोचिंग के व्यापार व मूल्यांकन की आउटसोर्सिंग को बढ़ावा देंगी, बल्कि शोषित समूहों व जातियों से आने वाले बच्चों, इनमें भी विशेषकर लड़कियों, के हितों के ख़िलाफ़ जाकर भारत की शिक्षा व्यवस्था में टैस्टिंग को पीसा (पीआईएसए) जैसी वैश्विक एजेंसियों से जोड़ देंगी। इस तरह, भारत की विविध भाषाओं और स्थानीय ज्ञान परंपराओं का विशाल परिदृश्य हमेशा के लिए दफ़्न हो जायेगा।

9. यह नीति किसी भी जगह उर्दू का, जोकि संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल है, ज़िक्र तक नहीं करती है, जबकि संस्कृत को इसमें उच्च-शिक्षा समेत शिक्षा के हर स्तर पर एक जुनून की तरह थोपा गया है।

10. यह नीति केंद्र सरकार द्वारा एक राष्ट्रीय शोध प्रतिष्ठान (एनआरसी) की स्थापना प्रस्तावित करती है, जोकि देशभर के अकादमिक संस्थानों, विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में सभी विषय-क्षेत्रों में शोध का मार्गदर्शन, समन्वयन तथा वित्तीय प्रबंधन करेगा। यह प्रतिष्ठान विज्ञान, तकनीकी, परमाणु ऊर्जा, जैव-प्रौद्योगिकी, पशु-चिकित्सा, चिकित्सा, सामाजिक विज्ञान और मानविकी जैसे विभिन्न क्षेत्रों में वर्तमान में

वित्तीय सहायता प्रदान करने वाली सभी एजेंसियों के साथ समन्वय बनाने में निर्णायक भूमिका निभायेगा (17.9; 17.10)। शोध व ज्ञान के सृजन में निर्णय लेने की प्रक्रिया को किसी एक संस्था के केंद्रीकृत व लालफ़ीताशाही जकड़न में लाने का अवश्यंभावी परिणाम श्रेष्ठ शोध के लिए ज़रूरी स्वच्छंदता, सृजनात्मकता और उत्साह को बाधित करने में ही प्रकट होगा।

11. इस नीति में स्कूल या उच्च-शिक्षा के स्तर पर सामूहिक वार्ता व दख़ल के लिए लोकतांत्रिक रूप से चयनित विद्यार्थी संघों या शिक्षक संस्थाओं/संघों की भूमिका की कोई गुंजाइश नहीं है।

12. यह नीति शिक्षा के हर स्तर पर, नियमित औपचारिक शिक्षा के समानांतर या फिर अक़सर विकल्प के तौर पर भी, ऑनलाइन तथा डिजिटल शिक्षा को ज़ोर-शोर से बढ़ावा देती है। ऑनलाइन व डिजिटल शिक्षा को इसमें ड्रॉपआउट्स की समस्या के इलाज तथा वंचित समूहों को शिक्षा प्रदान करने की रणनीति के रूप में पेश किया गया है। जबकि, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आँकड़ों के अनुसार, 5 से 24 साल के बीच के सदस्यों वाले मात्र 8% घरों में कंप्यूटर व इंटरनेट कनेक्शन, दोनों उपलब्ध हैं; ग्रामीण घरों में 15% से कुछ ऊपर व शहरी क्षेत्रों में 42% घरों के पास ही इंटरनेट सेवा उपलब्ध है (इस गणना में साइबर कैफ़े व पड़ोसी घर शामिल हैं); निर्धनतम 20% घरों में केवल 2.7% के पास ही कंप्यूटर है तथा 8.9% को इंटरनेट सुविधा प्राप्त है। डाटा के ख़र्चे के अलावा, स्मार्टफ़ोन व अन्य यंत्रों की बढ़ती क़ीमत ऑनलाइन शिक्षा को आमजन की क्षमता के बाहर कर देती है।

अगर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लागू होती है, तो यह विभिन्न कोर्सों में बेतहाशा फ़ीस वृद्धि को अंजाम देगी; विश्वविद्यालयों व कॉलेजों के निजीकरण में तथा स्व-वित्त पोषित कोर्सों और मुनाफ़ाखोर संस्थानों की बाढ़ आ जाएगी; विश्वविद्यालयों व कॉलेजों से बड़े स्तर पर, विशेषकर हाशियाकृत समुदायों से आने वाले युवाओं का, बहिष्करण होगा; विद्यार्थी-कर्ज़ बढ़ेंगे; दलितों, पिछड़ों व अल्पसंख्यकों को मिलने वाले वज़ीफ़ों तथा अन्य लाभों में कमी आएगी; प्रवेश, भर्तियों व पदोन्नतियों में आरक्षण की नीति ख़त्म हो जाएगी; और विश्वविद्यालयों-कॉलेजों की अकादमिक निर्णय-प्रक्रियाओं और स्वशासन में विद्यार्थियों की लोकतांत्रिक भूमिका का स्थान सिकुड़ जायेगा।

इसलिए हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को ख़ारिज करते हैं और लोकतांत्रिक व वैधानिक रूप से विकसित ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा नीति की माँग करते हैं जो

• केजी से पीजी तक बहु-भाषी संदर्भ में मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाते हुए, विविधताओं को समाहित करने वाले व भेदभाव को बाहर करने वाले, लोकतांत्रिक, विकेन्द्रीकृत तथा सहभागी प्रशासनिक ढाँचे के तहत, पड़ोसी स्कूलों पर आधारित समान स्कूल व्यवस्था के ज़रिये राज्य-वित्त पोषित मुफ़्त व अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था को स्थापित करेगी।

• केजी से पीजी तक सबको समान गुणवत्ता वाली मुफ़्त शिक्षा उपलब्ध कराएगी; व्यवस्थित रूप से भेदभाव का शिकार बनाये गए व शोषित किये गए लोगों के लिए आरक्षण सहित सामाजिक न्याय के संवैधानिक उसूलों पर खड़े सरकारी क्षेत्र में होगी। अभियांत्रिकी, चिकित्सा, प्रबंधन या कंप्यूटर विज्ञान सहित किसी भी कोर्स के किसी भी विद्यार्थी से कोई फ़ीस या पैसा नहीं लेगी।

• शिक्षा में किसी भी तरह की मुनाफ़ाख़ोरी को समाप्त करेगी - लोकोपकारी संस्थान अपने फ़ंड्स से मुफ़्त शिक्षा उपलब्ध कराएँगे।

• सुनिश्चित करेगी कि कोई सार्वजनिक फ़ंड किसी भी बहाने से किसी निजी या लोकोपकारी संस्था को हस्तांतरित न किया जाये।

• विश्वविद्यालयों के स्वशासन की पूर्ण स्वायत्तता सुनिश्चित करेगी - इनका लोकतांत्रिक संचालन शिक्षकों व विद्यार्थियों के अकादमिक समुदाय के हाथों में होगा।
• शिक्षा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को रोकेगी।

समस्त प्रतिभागी संगठन

******

9 अप्रैल, 2021 को नई दिल्ली में अभाशिअमं द्वारा आयोजित छात्र और युवा संगठनों के अखिल भारत सम्मलेन का प्रस्ताव

9 अप्रैल 2021 को जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय युवा केंद्र, नारायण दत्त तिवारी भवन, नई दिल्ली में "अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच" द्वारा आयोजित छात्र और युवा संगठनों का अखिल भारत सम्मेलन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को अस्वीकार करता है, और साथ ही केंद्र सरकार द्वारा कोविड-19 महामारी के बहाने देश भर में बिना लोकतांत्रिक परामर्श के इस नीति को लागू करने की कोशिशों के खिलाफ संघर्ष का प्रण लेता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 समानता, समाजवाद, और धर्मनिरपेक्षता के मौलिक अधिकारों के साथ सामाजिक न्याय के मूल्यों और सामाजिक विविधता के सम्मान पर आधारित संवैधानिक ढांचे का उल्लंघन करती है। यह तथाकथित योग्यता के नाम पर शिक्षा के व्यावसायीकरण और केंद्रीकरण को बढ़ावा देती है। इसके विपरीत, यह मौजूदा भेदभावपूर्ण और अन्यायपूर्ण शिक्षा व्यवस्था की समस्याओं को उजागर नहीं करती।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 राज्य को सबको शिक्षा देने के उसके संवैधानिक उत्तरदायित्व से मुक्त करती है। शिक्षा क्षेत्र में कॉरपोरेट को बढ़ावा देकर यह नीति औपचारिक स्कूली शिक्षा, उच्च शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा से 90 प्रतिशत छात्रों को बाहर कर देगी जो सामाजिक हाशिए से हैं, जैसे अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़े वर्गों, धार्मिक, क्षेत्रीय और भाषाई अल्पसंख्यक, और इन सभी श्रेणियों की महिलाएँ एवं विकलांगजन। इसलिए, आज की सभा स्पष्ट रूप से वर्तमान सरकार की तथाकथित शिक्षा नीति को शिक्षा के चरित्र और उद्देश्य के लिए हानिकारक बताते हुए खारिज करती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 डबल्यूटीओ-गैट्स की आवश्यकताओं के अधीन शिक्षा को एक व्यापार-योग्य वस्तु बनाने का प्रयास है, जो अंतर्राष्ट्रीय पूंजी के हित में है। उसका यह भी उद्देश्य होगा कि देश का कार्यबल आज्ञाधीन बने और वैज्ञानिक और तर्कसंगत विचार को हतोत्साहित किया जाए, जिससे सामाजिक समानता और न्याय पर आधारित व्यवस्था का विकास न हो सके। वास्तव में, नई शिक्षा नीति 2020 के लागू होने से शिक्षा व्यवस्था का भेदभावपूर्ण और असमान चरित्र गहराएगा जिससे भारत की युवा पीढ़ी की अच्छे भविष्य के लिए आशा भी नष्ट हो जाएगी। यह भारत को एक राष्ट्र और समाज के रूप में उदारवादी पूंजीवाद का गुलाम बना देगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षा व्यवस्था में लोकतांत्रिक व्यवस्था को नष्ट करके कॉरपोरेट एजेंसियों को शिक्षा व्यवस्था के न केवल अकादमिक, बल्कि प्रशासनिक व वित्तीय कार्यों का नियंत्रण करने का अधिकार देगी। छात्र और शिक्षक जो अकादमिक समुदाय का मूल आधार हैं, उनके अधिकारों को पूरी तरह से खत्म किया जा रहा है, उन्हें कोई अकादमिक स्वतंत्रता नहीं है और ना ही उनके पास सामूहिक रूप से शिक्षण संस्थानों के कामकाज को प्रभावित करने का अधिकार है।

आज का सम्मेलन भारत की शिक्षा प्रणाली में समानता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने, गणतंत्र के सभी नागरिकों को समान संवैधानिक अवसर का प्रावधान सुनिश्चित करने, और भारत की विविधता, बहुलता और बौद्धिक और सांस्कृतिक समृद्धि को अकादमिक व्यवस्था में समायोजित करने के लिए प्रतिबद्ध है।

राज्य द्वारा पूर्व-प्राथमिक से लेकर स्नातकोत्तर और व्यावसायिक शिक्षा का पूर्ण सार्वजनिक वित्त-पोषण करने की व्यवस्था ही इन आकांक्षाओं को सुनिश्चित कर सकती है।

शिक्षण में अकादमिक स्वायत्तता को केवल तब ही बढ़ावा दिया जा सकता है जब सब शैक्षिक संस्थानों का प्रशासन लोकतांत्रिक हो तथा समाज के सभी हिस्सों के बीच शिक्षा का प्रसार हो। शैक्षिक संस्थान नौकरशाही या उद्योगों की तरह नहीं चल सकते, जैसा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में प्रस्तावित है।

प्रवेश और दाखिला प्रक्रियाओं का केंद्रीकरण स्कूल और कॉलेज परीक्षाओं को महत्वहीन बना कर प्राइवेट कोचिंग संस्थानों को बढ़ावा देता है। पाठ्यक्रम के केंद्रीकरण से छात्र ऐसी पढ़ाई करने के लिए बाध्य होते हैं जिसका उनके समाज और जीवन से कोई संबंध नहीं है। गुणात्मक शिक्षा और समान अवसर के लिए जरूरी है कि विविध ज्ञान और सीखने की प्रक्रियाओं को शिक्षण प्रणाली में समाहित किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के लागू होने से विभिन्न पाठ्यक्रमों में शुल्क वृद्धि, विश्वविद्यालयों का निजीकरण, स्व-वित्तपोषण पाठ्यक्रमों और लाभकारी संस्थानों में वृद्धि होगी; उच्च शिक्षण संस्थानों से बड़ी संख्या में छात्रों को बाहर का रास्ता दिखाया जाएगा, जिसमें से अधिकतर हिस्सा वंचित समुदायों से होगा; छात्रों पर शिक्षा-संबंधी कर्ज बढ़ेगा; छात्रवृत्ति घटाई जाएगी, और दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक समुदायों को मिलने वाले लाभ घटाए जाएंगे; प्रवेश और नियुक्तियों में आरक्षण नीतियों को कमज़ोर किया जाएगा; और छात्रों को अकादमिक निर्णयन की लोकतांत्रिक प्रक्रिया से बाहर कर दिया जाएगा।

इसलिए हम नई शिक्षा नीति 2020 का बहिष्कार करते हैं और एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया से विकसित और पारित राष्ट्रीय शिक्षा नीति की मांग करते हैं जो

• किंडर गार्टन से बारहवीं कक्षा तक एक निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था बनाए, जिसमें बहु-भाषाई समाज के मद्देनज़र मातृभाषा शिक्षा का माध्यम हो। यह समान स्कूली व्यवस्था के तहत हो, जिसमें विविधता सम्मिलित हो और भेदभाव के लिए जगह नहीं हो, और जिसका नियंत्रण एक लोकतांत्रिक, विकेंद्रित और सहभागितापूर्ण ढांचे से हो।

• सरकारी क्षेत्र में केजी से पीजी तक सभी के लिए समान गुणवत्ता की मुफ्त शिक्षा प्रदान करे, जिसमें सामाजिक न्याय के संवैधानिक सिद्धांत शामिल हों, और जिसमें व्यवस्थित भेदभाव और उत्पीड़न का शिकार हुए समुदायों के लिए आरक्षण नीति भी सम्मिलित हो। किसी भी छात्र से किसी भी पढ़ाई के कोर्स के लिए पैसे न लिए जाएँ और जिसमें इंजीनियरिंग, चिकित्सा, प्रबंधन, या कंप्यूटर विज्ञान इत्यादि पाठ्यक्रम भी शामिल हों।

• शिक्षा में किसी भी रूप में लाभ कमाये जाने को समाप्त करे। परोपकारी संस्थान अपने खुद के खर्च से छात्रों को मुफ्त में शिक्षा प्रदान करें।

• यह सुनिश्चित करे कि सार्वजनिक निधि को किसी भी बहाने से निजी या परोपकारी संस्थानों को नहीं दिया जा सके।

• विश्वविद्यालयों की पूर्ण स्वायत्ता और उनका स्व-शासी चरित्र सुनिश्चित करे और उनका प्रबंधन लोकतांत्रिक तरीके से करे, जिसमें छात्रों और शिक्षकों की भागीदारी सुनिश्चित हो।

• शिक्षा में एफडीआई (प्रत्यक्ष विदेशी निवेश) पर रोक लगाए।

******

महा-सम्मेलन में पेश व पारित विद्यार्थियों-युवाओं के संवैधानिक मूल्यों, अधिकारों और जिम्मेदारियों का चार्टर

प्रस्तावना

हम, भारत के छात्र, मानते हैं कि शिक्षा एक अधिकार है, नाकि विशेषाधिकार; कि छात्र शिक्षा में बराबर के भागीदार हैं; और शिक्षा के सामाजिक, व्यक्तिगत, सांस्कृतिक व आर्थिक उद्देश्य होते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी, चाहे वो किसी भी अध्ययन क्षेत्र, अध्ययन के तरीके या कोर्स पहुँचाने के माध्यम से जुड़ा/जुड़ी हो, इस चार्टर में निर्धारित सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हकदार है। "प्रत्येक विद्यार्थी, हर प्रकार के भेदभाव से मुक्त होकर, जिसमें राजनीतिक विश्वास, धर्म, जातीय या सांस्कृतिक मूल, लिंग, लैंगिक अभिव्यक्ति, यौन अभिविन्यास, आयु, सामाजिक-आर्थिक स्थिति या उन्हें प्रभावित करने वाली कोई भी विकलांगता शामिल है, इस चार्टर में निर्धारित सभी अधिकारों और स्वतंत्रता का हकदार है।"

इस चार्टर में निर्धारित किए गए अधिकार सम्मानजनक जीवन जीने के लिए शिक्षा के मौलिक मानव अधिकार पर आधारित हैं, जो कि संविधान में दर्ज है।

यह चार्टर संवैधानिक रूप से दर्ज लोकतांत्रिक जिम्मेदारियों को भी दोहराता है कि

1. उन महान आदर्शों को संजोएँ और उनका पालन करें जिन्होंने ब्रिटिश उपनिवेशवाद से हमारे देश की आजादी के संघर्ष तथा समानता, बंधुत्व और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित एक आधुनिक राज्य की स्थापना के विचार को प्रेरित किया।

2. भारत के सभी लोगों के बीच, उनकी धार्मिक, भाषाई, क्षेत्रीय या समूह-विशेष की विविधताओं से परे जाकर, सद्भाव और बंधुत्व को बढ़ावा दें; और जाति, लिंग, धर्म, 'सामान्य शरीर' या भेदभाव के अन्य आधारों पर टिकी ऐसी सभी प्रथाओं का त्याग करें जो व्यक्ति की गरिमा के लिए अपमानजनक हैं।

3. हमारी मिश्रित संस्कृति की समृद्ध विरासत को महत्व दें और आगे बढ़ाएं।

4. वैज्ञानिक सोच, मानवतावाद और तर्कसंगत जांच और सुधार की भावना को विकसित करें;

5. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधि के सभी क्षेत्रों में उत्कृष्टता की दिशा में प्रयास करें ताकि हमारा समाज प्रयास और उपलब्धि में निरंतर उच्च स्तरों तक पहुँचे।

6. इसलिए प्रत्येक विद्यार्थी पूरे शैक्षणिक समुदाय के लिए बराबरी व पूर्ण समर्थन का माहौल और वातावरण बनाने का प्रयास करे और इस तरह शिक्षा के लिए एक स्वस्थ लोकतांत्रिक माहौल के निर्माण में योगदान दे।

विद्यार्थी-युवाओं के अधिकार

इन मूल्यवान लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित अधिकारों को सुनिश्चित करना होगा।

1. समानता और सामाजिक न्याय के मौलिक अधिकार की एकमात्र गारंटी के रूप में, शिक्षा के किसी भी पाठ्यक्रम में गुणवत्तापूर्ण उच्चतम स्तर तक मुफ़्त पढ़ने और उसे पूरा करने के लिए सभी प्रकार के समर्थन तक पहुँच।

2. किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम के पहलुओं तक पारदर्शी तरीके से सूचना की पहुँच।

3. सभी विद्यार्थियों को अपनी पृष्ठभूमि और अनुभव को शैक्षिक गुणवत्ता के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में दर्ज करने तथा उपयोग करने का अधिकार है। विविध दृष्टिकोणों की समानता को पहचानने से शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

4. यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त परामर्श व कॉउंसलिंग उपलब्ध होनी चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी, प्रशासनिक, वित्तीय या भौतिक पाबंदियों से मुक्त होकर, अपनी पसंद के किसी भी संस्थान या पाठ्यक्रम में आवेदन करने के अधिकार का लाभ उठा सके।

5. सभी विद्यार्थियों को, दंडात्मक शैक्षणिक, वित्तीय या कानूनी परिणामों के डर के बिना, मुक्त होकर संघों में संगठित होने का अधिकार है।

6. सभी विद्यार्थियों को अपने संस्थानों के सभी निर्णय लेने वाले निकायों में सीधे या लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व के माध्यम से सह-शासन का अधिकार है।

7. सभी विद्यार्थियों को, विशेष रूप से उच्च शिक्षा में, यह हक़ हासिल है कि उनकी राय पर समान गंभीरता से विचार किया जाए।

8. सभी विद्यार्थियों को, न केवल अकादमिक मामलों में बल्कि सभी विषयों पर, खुद को मुक्त होकर अभिव्यक्त करने का अधिकार है।

अध्ययन के सामाजिक पहलू

9. सभी विद्यार्थियों को किसी भी ऐसे कृत्य के खिलाफ स्वतंत्र और निष्पक्ष अपील करने का अधिकार है जिसे वे भेदभावपूर्ण समझते हैं।

10. सभी विद्यार्थियों को सामाजिक मेलजोल के लिए भौतिक स्थल उपलब्ध होने का अधिकार है।

11. सभी विद्यार्थियों को शिक्षण व सीखने के ऐसे उपयुक्त वातावरण का अधिकार है जो स्वायत्त सीखने के विकास, आलोचनात्मक चिंतन, वैज्ञानिक सोच और व्यक्तिगत विकास को समर्थन तथा प्रोत्साहन दे।

12. सभी विद्यार्थियों को अकादमिक विचार की स्वतंत्रता का अधिकार है; और मौजूदा ज्ञान को चुनौती देने की स्वतंत्रता है।

13. सभी विद्यार्थियों को निरंतर समीक्षित और ताज़ातरीन शैक्षिक कार्यक्रम का अधिकार है जिसमें वो बराबर के सहभागी के रूप में हिस्सा लें।

14. सभी विद्यार्थियों को अपने शैक्षणिक कार्य की ग्रेडिंग को बाहरी परीक्षक द्वारा चुनौती देने का अधिकार है।

निजता का अधिकार और सूचना तक पहुँच

15. सभी विद्यार्थियों को निजता और व्यक्तिगत जानकारी के दुरुपयोग से सुरक्षा का अधिकार है।

16. सभी विद्यार्थियों को स्वतंत्र रूप से ज्ञान तक पहुँचने और समाज से साझा करने का अधिकार है।

17. सभी विद्यार्थियों को ओपन सोर्स के सिद्धांत पर आधारित शैक्षणिक तकनीकों और प्रौद्योगिकी का अधिकार है।

(इस दस्तावेज़ को अभाशिअमं द्वारा 9 अप्रैल को दिल्ली में आयोजित विद्यार्थियों व युवाओं के महा-सम्मेलन में पेश और पारित किया गया था। इसका अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद दीक्षा वर्मा ने किया है.)

*****

छात्र और युवा संगठनों का राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के खिलाफ व्यापक प्रोग्राम ऑफ एक्शन (POA)

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच (AIFRTE) द्वारा आयोजित महा-सम्मेलन में पारित

छात्र संगठन आंदोलन का नेतृत्व कर सकते हैं और जनता को सामाजिक बदलाव के लिए लोकतांत्रिक संघर्ष में जोड़ने में उत्प्रेरक की भूमिका निभा सकते हैं। समस्त इतिहास में, विशेषकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में, छात्र संगठनों के जुड़ने से आंदोलन का रुख ही नहीं बल्कि उसका विमर्श भी बदला और संघर्ष नेता केंद्रित न रहकर जन केंद्रित हुआ। जीवंत जोशीले छात्र संगठनों ने नेताओं को संदेश दिया कि वे अब जनता को नजरंदाज नहीं कर सकते।

प्रोग्राम ऑफ एक्शन (PoA) बनाते समय हमें संगठनों की ताकत और चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों को समझने की आवश्यकता है। हमें यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि छात्र देश की जनता को तानाशाही शासक वर्ग के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रेरित कर सकते हैं और उनका नेतृत्व कर सकते हैं। अगर छात्र इस चुनौती का कार्यभार उठाने में विफल होते हैं तो देश भी विफल हो जाएगा। हालांकि, हमें लोगों को शिक्षित करने के विचार को छोड़ कर, लोगों से सीखने की संस्कृति को बढ़ावा देने की ज़रूरत है।

छात्रों को कुशल बनाने (स्किलिंग) के सवाल को सही ढंग से और सावधानीपूर्वक संबोधित करने की आज आवश्यकता है। यह सामाजिक उत्पीड़न, आर्थिक अभाव, अवसरों की कमी और शांतिपूर्ण भविष्य की कोई उम्मीद ना बचने से होने वाली पीड़ा का परिणाम है। जब तक हम यह नहीं समझते कि लोगों को यह क्यों महसूस कराया जाता है कि हमारे बच्चों की अकुशलता के कारण ही वे कुछ अच्छा नहीं कर पाते, हम यह नहीं उजागर कर पाएंगे कि स्किलिंग के नाम पर बच्चों को माध्यमिक शिक्षा पूरी करने से पहले ही मुख्यधारा की शिक्षा से बाहर निकाला जा रहा है और दूसरी ओर हमारे बच्चे केवल कौशल पर आधारित बेहद कम वेतन देने वाली गैर-रचनात्मक मजदूरी के चक्र में फंसे रहेंगे और पीढ़ी दर पीढ़ी यह अन्याय जारी रहेगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार छात्रों को समुदाय की व्यवसायिक जरूरतों पर आधारित व्यवसायिक कौशल दिया जाएगा, न कि छात्रों की अभिक्षमता के अनुसार। छात्र स्कूल द्वारा दी गई व्यवसायिक प्रशिक्षण की सूची में से चुन सकते हैं। यह छात्रों के नहीं, वैश्विक पूंजी के हक में है कि अर्ध-कुशल, सस्ते दामों पर काम करने वाले श्रमिक हों जिनकी अज्ञानता का उपयोग प्रतिरोधरहित शोषण करने के लिए किया जा सके। मेक इन इंडिया और स्टार्ट अप के लिए ऐसे ही मूक कार्यबल की जरूरत है।

प्रवेश और दाखिला प्रक्रियाओं का केंद्रीकरण स्कूल और कॉलेज परीक्षाओं को महत्वहीन बना कर निजीकृत कोचिंग संस्थानों को बढ़ावा देता है। पाठ्यक्रम के केंद्रीकरण से छात्र ऐसी पढ़ाई करने के लिए बाध्य होते हैं जिसका उनके समाज से कोई संबंध नहीं है। गुणात्मक शिक्षा और समान अवसर के लिए जरूरी है कि विविध ज्ञान और सीखने की प्रक्रियाओं को ससम्मान समाहित किया जाए।

ऐसी नीति के विरोध और समतावादी शिक्षा प्रणाली के लिए संघर्ष के लिए किसी भी राष्ट्रीय स्तर के छात्रों और युवा संगठनों के समन्वय बनाने के अलावा ज़रूरी है कि इस संघर्ष के राज्य, जिला और संस्थान/क्षेत्रीय स्तर भी होने चाहिए। इस तरह के परिसंघ बनाने में कुछ संगठन जो राष्ट्रीय स्तर का हिस्सा नहीं हैं, वे राज्य स्तर पर भागीदारी कर सकते हैं। कोई संगठन एक राज्य में परिसंघ का हिस्सा हो सकता है और दूसरे में नहीं। छात्र और युवा आंदोलन के निर्माण में लचीलापन लाने की जरूरत है। साथ ही, कई छात्र और युवा संगठन राजनीतिक दलों द्वारा मार्गदर्शित होते हैं, जिसके कारण वे अपने मार्गदर्शक दल का अनुसरण करने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। इसे ठीक से समझ कर काम करने की जरूरत है। हर संगठन और व्यक्ति को स्पष्टता से समझ कर एक बड़े आंदोलन का निर्माण किया जा सकता है।

अभाशिअमं चाहता है कि छात्र संगठन इन बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए आगे बढ़ें। छात्र और विश्वविद्यालय आधारित संगठन अपने शैक्षिक संस्थानों के विशिष्ट मुद्दों को भी उठा सकते हैं। यह विशिष्ट आंदोलन पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं को मज़बूत करने से लेकर, भ्रष्ट वाइस चांसलर को हटाने, लैंगिक संवेदनशीलता को लेकर हो सकते हैं। अभाशिअमं को उम्मीद है कि इन विशिष्ट संस्थान केंद्रित संघर्षों को देश भर के छात्र आंदोलन समर्थन देंगे। समर्थन करने वाले छात्र भी संस्थागत मुद्दों की जटिलता को समझ पायेंगे। इससे सामूहिक एकजुटता का प्रसार होगा।

अभाशिअमं यह उम्मीद भी करता है कि छात्र संगठन बड़े आंदोलनों को भी समर्थन देंगे जैसे कि मौजूदा किसान आंदोलन, सार्वजनिक क्षेत्र में कर्मचारी आंदोलन, स्वास्थ्य और पोषण संबंधी आंदोलन, सूचना के अधिकार का आंदोलन, सफाई कर्मचारियों के आंदोलन और दलित, आदिवासी, महिलाओं और विक्लांगजनों के सम्मानजनक जीवन और समान अवसरों के लिए आंदोलन इत्यादि। संक्षेप में, छात्रों को भारतीय समाज के मानवीकरण और लोकतांत्रीकरण की प्रक्रिया का एक हिस्सा होना चाहिए।

किसी भी छात्र या युवा संगठन का प्रोग्राम ऑफ एक्शन राज्य-विशेष के लिए होना चाहिए और कभी-कभी संस्थान या क्षेत्र-विशेष के लिये। किसी भी संस्थान/क्षेत्र की मांग को राष्ट्रीय शिक्षा नीति से जोड़ कर समझना जरूरी है। उदाहरण के तौर पर, जब अन्ना यूनिवर्सिटी, चेन्नई ने आरक्षण नीति के मुद्दे पर दो पोस्ट-ग्रेजुएट पाठ्यक्रमों में प्रवेश रोक दिया, तब इस कदम का संबंध राष्ट्रीय शिक्षा नीति से साफ दिखाई दिया और लोगों को यह समझ आ सका कि किस तरह लोगों की जरूरतों और आकांक्षाओं पर आधारित विभिन्न राज्य की नीतियाँ इससे खत्म कर दी जाएंगी।

प्रत्येक राज्य स्तरीय निकाय एक 'राज्य शिक्षा नीति' की मांग कर सकता है जिसमें राज्य की जरूरतों के अनुसार काम हो सके। केवल जनजागरण अभियान ही श्रमिक वर्ग तक पहुंचने में मदद कर सकता है। सामाजिक संवाद ही इस प्रक्रिया को शुरू करने का संभावित तरीका है। महिलाएं इस मुद्दे को खूब समझती हैं और खुद आश्वासित होने के बाद वे संदेशवाहक की भूमिका निभा और संगठित होकर संघर्ष की धारा निर्धारित कर सकती हैं। फुटपाथ पर बैठना, ऐसी जगहें जहां लोग आराम करने के लिए बैठते हैं, बस स्टॉप, काम/सीखने की जगहें, बाज़ार इत्यादि जैसी जगहों पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पर संवाद किया जा सकता है। प्रोग्राम ऑफ एक्शन में सेमिनार, वेबिनार अभियान, राउंड टेबल वार्ता, धरने, रैलियां, भूख हड़ताल इत्यादि सम्मिलित किए जा सकते हैं। साथ ही, नुक्कड़ नाटक और गीतों के माध्यम से जनजागरण किया जा सकता है। प्रसिद्ध गाथागीत गायक गद्दर के सुरताल के प्रति लोगों का चुम्बकीय आकर्षण था। ऐसी ही धुन और बल को अभियान का हिस्सा बनाने की जरूरत है। कम-से-कम एक महीने के अभियान के उपरांत, आंदोलन अपने अगले चरण में जा सकता है जो लोगों को संघर्ष के लिए संगठित कर सके। संघर्ष के स्वरूप को स्थानीय स्तर पर तैयार करने की आवश्यकता है । कुछ दिनों के बाद अखिल भारतीय आह्वान हो सकता है।

जन समर्थन जुटाने के लिए पत्रकार, शिक्षक, डॉक्टर, वकील, आईटी कर्मचारी, लेखक इत्यादि से वार्ताओं का आयोजन किया जा सकता है।

अभियान के दौरान पैदल और सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करना एवं यातायात के दौरान आम लोगों के बीच अभियान द्वारा फ़ंड इकट्ठा करना, आंदोलन के लिए वित्तीय संसाधन जुटाने के सबसे बेहतर तरीके हैं।

अखिल भारतीय स्तर पर प्रोग्राम ऑफ एक्शन का एक बेहद ही व्यापक ढांचा हो सकता है जिसमें सभी कार्यक्रमों और तारीखों को सूचीबद्ध करना जरूरी नहीं है।

नई शिक्षा नीति के कार्यान्वयन को तुरंत रोकने के लिए छात्रों और युवाओं के प्रतिनिधित्व की आवश्यकता है, जिसके तहत राज्य सरकारों को ज्ञापन देना और अन्य सभी स्तरों पर अभियान तेज़ करना होगा। अधिक से अधिक जन भागीदारी राज्य सरकारों को शीघ्र कार्यान्वयन रोकने के लिए बाध्य करेगी।

सम्मलेन में कुछेक आम नारों के संबंध में सुझाये गए विन्दु:

- किसानों की सामूहिक आवाज़ की तरह छात्र-युवाओं की भी सामूहिक आवाज़ होनी चाहिए.
- 1857 से शुरु हुए ऐतिहासिक संघर्ष की कड़ी में हमें आज के संघर्ष को फासीवाद के खिलाफ और शिशु कक्षा से पीएच. डी. की पढ़ाई के लिये समान व एकल शिक्षा व्यवस्था की बहाली के लिये केंद्रित करना चाहिए.
- संघर्ष शहरों से गाँवों की ओर जाना चाहिए.
- हमें सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था को बचाना है और शिक्षा के निजीकरण के खिलाफ जाना है.
- नई शिक्षा नीति पूर्णतः शिक्षा के भगवाकरण के रास्ते पर है.
- संस्कृतनिष्ठ व भगवाकृत पाठ्यक्रम का ज़रूर विरोध होना चाहिए.
- बहुतेरे आम छात्र नई शिक्षा नीति को लाभकारी मानते हैं. इसलिए, हमें उन्हें इससे होनेवाली हानियों के बारे में बताना होगा.
- हमें इसके लिये सामूहिक संघर्ष करना होगा.
- हमें शिक्षा के मसले को राजनैतिक मसला बनाना होगा.
- हमें अपने प्रतिरोध के रास्ते बदलने होंगे और संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिये गाँव-गाँव में कमिटियां बनानी होंगी.
- नई शिक्षा नीति के खिलाफ एक बड़ी लड़ाई की ज़रूरत है.
- नई शिक्षा नीति स्कूल से बाहर के बच्चों को संस्थागत हकीक़त में तब्दील कर देगी.
- समाजवादी समाज के निर्माण के लिये खड़े किये गए आन्दोलनों के बगैर हम सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था की स्थापना के लिये संघर्ष को वाकई आगे नहीं ले जा सकते.
- नई शिक्षा नीति शिक्षा के व्यावसायीकरण को बढ़ावा देती है जो गरीब छात्रों को शिक्षा से बेदखल करने का सीधा तरीका है.
- हमें छात्र-युवा आंदोलन को मज़बूत करना है और उन सभी लोगों के पास जाना है जो शिक्षा से वंचित हैं.
- लोगों के खिलाफ लागू की जा रही नीतियों के खिलाफ लड़ने के लिये हमें अधिक-से-अधिक संयुक्त मोर्चे बनाने होंगे.
- हमें नए तरीके से संगठित होकर ज़मीनी लड़ाई की शुरुआत करनी होगी.
- नई शिक्षा नीति में दूरस्थ शिक्षा की व्यवस्था पर जोर है. इसका हमें पुरजोर विरोध करना चाहिए.
- शिक्षा के बज़ट का आकार बढ़ना चाहिए.
- नई शिक्षा नीति को खारिज करने और समाजवादी समाज बनाने की सौगंध हमें लेनी चाहिए.
- नई शिक्षा नीति का विरोध पूरे देश में होना चाहिए.
- हमें समय-समय पर अपने संघर्षों की समीक्षा करनी चाहिए.
- जामिया, अलीगढ़ जैसे विश्वदिद्यालयों पर हमलों का पुरजोर विरोध होना चाहिए.
- नई शिक्षा नीति में 90 फीसदी छात्रों को शिक्षा से बेदखल करने की नीति है. हमें इसका जबरदस्त विरोध करना चाहिए.
- नई शिक्षा नीति राष्ट्रीय होने का दावा करती है, लेकिन यह तो राष्ट्रीयताओं को खत्म कर रही है. इसका विरोध होना चाहिए.

- सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को सरकारी एवं सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियों में आरक्षण मिलना चाहिए.

एनईपी 2020 को रद्द करो! राज्य शिक्षा नीति बनाओ!

एनईपी को रद्द करो! स्कूली शिक्षा बचाओ!

एनईपी को रद्द करो! स्कूलों को स्किल सेंटर बनाए जाने से रोको!

एनईपी को रद्द करो! सरकारी कॉलेज बचाओ!

एनईपी को रद्द करो! हमारे बच्चों के उच्च शिक्षा के अधिकार को बचाओ!

एनईपी को रद्द करो! छात्रों को कोचिंग सेंटरों के उत्पीड़न से बचाओ!

*****

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: 50 प्रमुख आपत्तियाँ

(व्यापक वितरण के लिए महा-सम्मेलन में अभाशिअमं द्वारा जारी दस्तावेज़)

1. राशिनी 2020 का क्रियान्वयन पूर्णतः अलोकतांत्रिक है, क्योंकि इसे संसद से पारित नहीं कराया गया है।

2. राशिनी 2020 पूरे तरीके से असंवैधानिक है, क्योंकि यह शिक्षा के बारे में महत्वपूर्ण निर्णय लेने के राज्य सरकारों के अधिकारों को भंग करता है जबकि शिक्षा भारतीय संविधान की समवर्ती सूची का विषय है। ऐसे विषय पर कोई निर्णय आमतौर पर राज्य सरकारों को ही लेना चाहिए। केंद्रीय नियामक निकाय, केंद्रीकृत पात्रता व मूल्यांकन परीक्षण और कक्षा 3, 5, और 8 में केंद्रीकृत परीक्षाओं को लागू करके यह नीति ज़रूरी अकादमिक और शैक्षणिक निर्णय लेने के राज्य सरकारों को संवैधानिक रूप से प्रदान संघीय अधिकार को दरकिनार करती है।

3. राशिनी 2020 प्राचीन काल के स्वर्ण युग होने के खारिज किए जा चुके उसी औपनिवेशिक विचार को स्थापित करता है जिसमें जाति और लिंग आधारित भेदभाव को उपेक्षा की गई थी। यह गौतम बुद्ध और महावीर के साथ-साथ प्राचीन काल में चार्वाक के दार्शनिक कार्य और मध्यकाल के दौरान सूफी-भक्ति, इस्लामी और सिख परंपराओं के ज्ञान और बहस की गैर-ब्राह्मणवादी धारा के समृद्ध योगदान की पूरी तरह से उपेक्षा करता है।

4. राशिनी 2020 असंवैधानिक है क्योंकि यह समानता के उस मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है, जिसका पालन राज्य की संवैधानिक ज़िम्मेदारी है। ये नीति देश की 85-90 फीसदी वंचित आबादी के लिए स्कूल परिसर जैसे घटिया शैक्षिक प्रावधान, एकल शिक्षक विद्यालय, घर बैठे शिक्षा, दो स्तर के कोर्स और शिक्षा, डिजिटल इ-विद्या द्वारा एक-पक्षीय डिजिटल शिक्षा और मुक्त विद्यालयी जैसे प्रावधान करती है जो समानता के संवैधानिक सिद्धांत के खिलाफ है।

5. राशिनी 2020 तथाकथित 'मेरिट' की भ्रामक अवधारणा के माध्यम से, प्रवेश, भर्ती और पदोन्नति में आरक्षण के संवैधानिक प्रावधान की और सामाजिक न्याय के अन्य विधिवत प्रावधानों, जैसे छात्रवृत्ति, फैलोशिप, हॉस्टल, सब्सिडी आदि की अनदेखी करता है।

6. नीति में 'मेरिट' को शिक्षकों की योग्यता और पात्रता शर्तों के रूप में नहीं बल्कि "संस्था और समाज के प्रति प्रतिबद्धता और नेतृत्व गुणों को दिखाने" के रूप में समझा गया है। इससे 'राजनीतिक रूप से प्रतिबद्ध' व्यक्तियों को शैक्षणिक संस्थानों में प्रशासनिक व दूसरे ऊँचे पदों पर लाने की गुंजाइश बनती है।

7. राशिनी 2020 में भेदभाव से पीड़ित अनुसूचित जाति/जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग/विकलांग और अन्य वंचित वर्गों को सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण के संवैधानिक प्रावधान का कोई उल्लेख नहीं है।

8. नीति जानबूझकर 'धर्मनिरपेक्षता' और 'समाजवाद' शब्द की अनदेखी करती है जो आजादी की लड़ाई की विरासत का हिस्सा हैं।

9. इसमें कहीं भी सभी बच्चों के लिए या वंचित वर्गों के लिए "मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा" के संवैधानिक जनादेश का उल्लेख नहीं है।

10. राशिनी 2020 हमारे 85% से 90% बच्चों और युवाओं को पूर्णकालिक औपचारिक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से बाहर कर देगा, उन्हें घटिया और प्रतिगामी शिक्षा की तरफ खदेड़ देगा और उन्हें कम वेतन वाले बाल श्रम या पारिवारिक व्यवसायों की ओर धकेल देगा, जिससे जाति व्यवस्था सुदृढ़ होगी।

11. नीति शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषाओं की भूमिका को कम करता है। जहाँ शिक्षा अधिकार कानून में आठवीं कक्षा तक की शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषाओं के इस्तेमाल का प्रावधान था। राशिनी 2020 इसे केवल 5वीं तक सीमित कर देती है। पुराने कानून की तरह इसमें भी "जहां तक संभव हो" जैसी शर्त रखी गई है जिससे यह सीमित प्रावधान भी अमल में लाने की सम्भावना कम हो जाए।

12. यह एकरूपता और केंद्रीकरण की प्रक्रियाओं को बढ़ाता है जो अनिवार्य रूप से मातृभाषाओं, क्षेत्रीय और स्थानीय भाषाओं, और ज्ञान की विविधता और प्रगति के विरोधी हैं।

13. राशिनी 2020 उर्दू के बारे में कहीं कुछ नहीं बोलता है, संविधान की आठवीं अनुसूची में सूचीबद्ध होने के बावजूद। इसके उलट, यह शिक्षा के हर स्तर पर, संस्कृत को थोपने का प्रयास करता है।

14. यह पूर्व-प्राथमिक शिक्षा और माध्यमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में प्रदान नहीं करता है।

15. तीसरी कक्षा के बाद 'परख' (PARAKH) के जरिए केंद्रीकृत परीक्षाएं आयोजित करवा कर यह नीति शिक्षा अधिकार कानून की 'नो-डिटेंशन पॉलिसी' को कमज़ोर करती है। इसकी वजह से वंचित वर्ग (या बहुजन अवाम) तालीम से भारी संख्या में बाहर किया जाएगा।

16. यह शिक्षा के व्यवसायीकरण को बढ़ावा देता है परोपकारी संस्थानों के स्थापना के नाम पर, बिना किसी भी प्रभावी तंत्र की स्थापना के। सेल्फ फाइनेंसिंग कोर्स अनुदानों में कमी, छात्र ऋणों, छात्रवृत्ति में कमी को बढ़ावा देता है।

17. यह शैक्षिक संस्थानों के शुल्क और वेतन संरचनाओं को पूरी तरह से समाप्त कर देता है, वे केवल ऑनलाइन पारदर्शी स्व-प्रकटीकरण की आवश्यकता को पूरा करते हैं यानी "लूट और शोषण करो फिर घोषणा कर दो"!

18. यह राष्ट्रीय प्रत्यायन(Accreditation) प्रणाली से जुड़ी ग्रेडेड स्वायत्तता की अवधारणा के माध्यम से सार्वजनिक विश्वविद्यालयों को नष्ट करता है।

19. उच्च शिक्षा संस्थानों के अनुदान को एनएसी (NAC) और आउटपुट की गुणवत्ता से जोड़ना यह दर्शाता है कि केवल कुछ बेहतर प्रदर्शन करने वाले (कुलीन) संस्थानों को ही सरकारी फंडिंग मिल पाएगी, इसमें बहुतेरे संस्थान पीछे रह जाएँगे और सरकारी स्कूलों की भांति बंदी के कगार पर आ जाएंगे।

20. राशिनी 2020 चार-वर्षीय स्नातक डिग्री कोर्स की सिफारिश करता है जबकि दिल्ली यूनिवर्सिटी में इसके खिलाफ संघर्षरत विद्यार्थियों और शिक्षकों की मांग पर खुद भाजपा ने इसे वहाँ से खत्म किया था।

21. स्नातकोत्तर को 2 वर्ष से घटाकर एक वर्षीय बनाया जाएगा और एमफिल डिग्री को हटा दिया जाएगा। इससे विद्यार्थियों में गुणवत्तापूर्ण शोध की क्षमता प्रभावित होगी। साथ ही, विश्वविद्यालय के शिक्षकों के कार्यों में भी उतार-चढ़ाव आएगा।

22. औपचारिक शिक्षा से बाहर निकलने के कई विकल्प देने के बहाने दरअसल यह नीति 'ड्रॉपआउट' या सही शब्दों में कहें तो तालीम से बेदखली को वैधता देती है। गौरतलब है कि आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के विद्यार्थियों एवं महिलाओं के लिए औपचारिक शिक्षा में वापस लौटना काफी मुश्किल होगा।

23. वैसे तो राशिनी 2020 उच्च शिक्षा की मौजूदा प्रशासनिक व्यवस्था के कठोर होने की आलोचना करता है लेकिन इसमें प्रस्तावित 'उच्च शिक्षा आयोग' (HECI) उसके चार अंगों (NHERC, NAC, HEGC, GEC) की व्यवस्था के चलते उच्च शिक्षा के हर स्तर पर केंद्रीकरण बढ़ जाएगा।

24. इसमें प्रस्तावित 'राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन' (NRF) के माध्यम से अकादमिक शोध पर केंद्रीय नियंत्रण स्थापित हो जाएगा जिससे शोध में पहलकदमी, रचनात्मकता और उत्साह खत्म हो जाएगा।

25. संविधान के अनुच्छेद 246 को नजरअंदाज करते हुए नीति में सभी विश्वविद्यालयों व कॉलेजों के दाखिले के लिए NTA के माध्यम से केंद्रीकृत परीक्षा की व्यवस्था करती है। ऐसी व्यवस्था से देश के विभिन्न हिस्सों की स्कूली शिक्षा में मौजूद गैर-बराबरियों व विषमताओं का दुष्प्रभाव और बढ़ेगा। इसके अलावा, PARAKH और NTA की वजह से न सिर्फ कोचिंग बिजनेस और मूल्यांकन के आउटसोर्सिंग को बढ़ावा मिलेगा बल्कि इससे वंचित व दमित जातियों व वर्गों के बच्चों के लिए उच्च शिक्षा हासिल करना और भी मुश्किल हो जाएगा।

26. नियमित शिक्षा के विकल्प के रूप में शिक्षा के सभी स्तरों पर ऑनलाइन पाठ्यक्रम शुरू किए जा रहे हैं, जबकि ये बहुसंख्यक बच्चों के बहुमत के लिए उपलब्ध ही नहीं हैं।

27. छात्रवृत्तियों को कथित तौर पर मेरिट के आधार देने की केंद्रीकृत व्यवस्था बनाई जाएगी। इसका अर्थ है कि सामाजिक वंचन पर आधारित छात्रवृत्तियाँ खत्म कर दी जाएंगी और इनकी कुल संख्या भी घट जाएगी।

28. विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में अपने व्यापार का संचालन करने और अपने मुनाफों को कहीं भी निवेश करने की छूट दी जा रही है। यह उच्च शिक्षा के पहले से ही स्तरीकृत प्रणाली में एक और परत जोड़ देगा; सार्वजनिक विश्वविद्यालयों से विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रतिभा के पलायन को बढ़ावा मिलेगा और छात्रों व अभिभावकों के उपर शैक्षिक कर्ज का भयावह बोझ पड़ेगा।

29. यह 200-बिंदु रोस्टर के अनुसार शिक्षकों की सभी रिक्त पदों पर समयबद्ध स्थायी नियुक्तियों से इनकार करता है।

30. यह उचित और समयबद्ध तरीके से संविदा व पैरा शिक्षकों के नियमितीकरण के मुद्दे को संबोधित नहीं करता है।

31. यह आंगनवाड़ी/ईसीसीई कार्यकर्ताओं को न तो पूर्णकालिक पूर्व-प्राथमिक शिक्षक का पद देता है और न ही उनके उपयुक्त प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है।

32. यह स्थायी शिक्षकों की पदोन्नति, 2003 के बाद नियुक्त शिक्षकों के लिए पेंशन और कॉन्ट्रैक्ट पर नियुक्त शिक्षकों के लिए मातृत्व अवकाश व स्वास्थ्य सुविधाओं के मुद्दों को नजरअंदाज करता है।

33. इसमें सभी सरकारी स्कूल शिक्षकों को पूरे 'स्कूल कॉम्प्लेक्स' में काम करने की व्यवस्था की गई है जो 5 किमी से 10 किमी के दायरे में फैले होंगे और दुर्गम इलाकों में भी हो सकते हैं। इससे शिक्षक को होने वाली परेशानी पर ध्यान नहीं दिया गया है।

34. स्कूल कॉम्प्लेक्स के प्रस्ताव और निजी स्कूल के साथ सरकारी स्कूल को जोड़ने के विचार के माध्यम से NEP 2020 विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात को कम करने और पड़ोस के सरकारी स्कूलों की अवधारणा को कमजोर करने का रास्ता खोलता है जिससे उनके बन्द होने या निजी स्कूल में विलय होने का मार्ग प्रशस्त होता है ।

35. यह नियोक्ताओं को कर्मचारियों की प्रोबेशन अवधि बढ़ाने की अनुमति देता है, जिससे शिक्षकों के शोषण की गुंजाइश बनती है।

36. यह संविदाकरण को बढ़ावा देने के लिए टेन्योर ट्रैक प्रणाली की सिफारिश करता है।

37. वरिष्ठता या अनुभव अब पदोन्नति में का मानदंड नहीं होगा।

38. यह पदोन्नति में आरक्षण/सामाजिक न्याय के मानदंडों को समाप्त करता है।

39. यह निजी स्कूल के शिक्षकों के वेतन संरचना को नियंत्रण-मुक्त करता है। सरकारी और निजी स्कूलों की जोड़ी बनाने के प्रस्ताव को देखते हुए यह व्यवस्था सरकारी स्कूल शिक्षकों के वेतन ढांचे को भी प्रभावित करेगी।

40. राशिनी 2020 में 'स्वयंसेवकों', 'सामाजिक कार्यकर्ताओं', 'परामर्शदाताओं', 'स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्तियों', 'स्कूल के पूर्व छात्रों', 'सक्रिय और स्वस्थ वरिष्ठ नागरिकों' और 'सार्वजनिक-उत्साह' समुदाय के सदस्यों की बड़े पैमाने पर भर्ती का प्रावधान है जो पूर्व प्राथमिक से लेकर स्कूली शिक्षा के हर चरण पर होगी। ज़ाहिर है सत्ता में बैठी पार्टी व संगठन अपने कार्यकर्ताओं को स्कूली शिक्षा में जगह देकर अपने वैचारिक एजेंडे को बढ़ाने के लिए इसका इस्तेमाल करेंगे।

41. इससे आगे, सामूहिक सौदेबाजी के लिए शिक्षक संगठनों के लिए कोई जगह नहीं होगी और नहीं छात्र संगठनों को आवाज़ बुलंद करने की आज़ादी ।

42. सत्ता के केन्द्रीयकरण के लिए विश्व व्यापार संगठन -टैरिफ और व्यापार पर सामान्य समझौता(गैट) के हुक्म के मुताबिक एकल खिड़की प्रणाली की मंजूरी के लिए कार्य किया जा रहा है ताकि निजीकरण और वैश्वीकरण को बढ़ावा देने के साथ-साथ धार्मिक कट्टरतावाद को आगे बढ़ाने के लिए संविधान विरोधी ब्राह्मणवादी, जातिवादी और पितृसत्तात्मक हिन्दू राष्ट्र के एजेंडों को आगे बढ़ाया जा सके।

43. घर की भाषा, मातृभाषा, स्थानीय भाषा, क्षेत्रीय भाषा को एक-जैसा मानना खतरनाक है। मातृभाषा की जगह पर क्षेत्रीय या किसी सूबे की भाषा थोपी नहीं जा सकती, चाहे मातृभाषा बोलने वाले की संख्या कितनी भी काम हो ।

44. त्रि-भाषा सूत्र 1960 के दशक से ही काफी विवाद , प्रतिरोध और विभिन्न व्याख्याओं के दौर से गुजरता रहा है । बावजूद इसके, मौजूदा शिक्षा नीति के दस्तावेज़ में इसकी व्याख्या मौजूद नहीं है।

45. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बड़े दावों के साथ वाल्यावस्था पूर्व देखभाल और शिक्षा को एक गुप्त कार्ययोजना है जो पूर्व प्राथमिक शिक्षा को बाजार के हवाले करने के लिए है।

46. इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है कि बाल्यावस्था पूर्व देखभाल और शिक्षा को कक्षा 1 और 2 के साथ समायोजित किया जाएगा बिना किसी सार्वजनिक बजट की सुनिश्चितता के।

47. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पहला ऐसा दस्तावेज है जो निजी संस्थानों को मुनाफा कमाने और शिक्षा के क्षेत्र मे देश के अंदर और बाहर निवेश करने की छूट देता है।

48. लंबे अरसे से स्थापित निवेश आधारित अवधारणा की जगह परिणाम आधारित अवधारणा के माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 आरएसएस द्वारा अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों मे संचालित एकल विद्यालय (एकल शिक्षक स्कूल) को वैधानिकता देती है और वैसे बजट स्कूलों को बढ़ावा देती है जहां पर्याप्त अधिसंरचना और प्रशिक्षित शिक्षक नहीं होते हैं।

49. निजी क्षेत्र, समुदाय, शिक्षार्थी या अभिभावक के वित्तीय सहायता के बगैर सिर्फ सरकारी व्यय से सार्वजनिक शिक्षा की सुनिश्चितता के संबंध में तपस मजूमदार कमेटी (2005) की सलाह को दरकिनार कर मौजूदा शिक्षा नीति न सिर्फ निजी निवेश, बल्कि शिक्षा में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की वकालत करती है।

50. बड़े पैमाने पर निजीकरण को बढ़ावा देते हुए, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 चतुराई से संसाधनों की कमी को सिद्ध करना चाहती है। संसाधनों की कमी के झूठ को 1835 के मैकाले के दास्तावेज़ से ही प्रचारित किया जाता रहा है। यह इसलिए किया जाता रहा है कि उच्च वर्ग का आधिपत्य ज्ञान, रोजगार और समाज पर बरकरार रहे। शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य विकास के सामाजिक क्षेत्र में पर्याप्त संसाधन की गैर-मौजूदगी संसाधनों की कमी की वजह से नहीं है। यह तो राजनीतिक प्रतिबद्धता की कमी की वजह से है।

*****

रोहतक के महिर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय में छात्र एकता मंच द्वारा शिक्षण संस्थानों को खोलने के लिए प्रदर्शन का प्रेस नोट

दिनांक:- 29 जून, 2021. आज छात्र एकता मंच (हरियाणा) के नेतृत्व में शिक्षण संस्थानों को पूर्ण रूप से खोलने के लिए विरोध प्रदर्शन किया गया। विरोध प्रदर्शन मदवि गेट नंबर 2 से शुरू होकर वी सी ऑफिस तक निकाला गया। विरोध प्रदर्शन का संचालन छात्र एकता मंच (हरियाणा) की राज्य सचिव मनीषा के द्वारा किया गया। विरोध प्रदर्शन शुरू करने से पहले मदवि गेट नंबर 2 पर एक छात्र सभा का आयोजन किया गया।

स्टेट प्लैटफ़ॉर्म फ़ॉर कॉमन स्कूल सिस्टम-तमिल नाडु की माँग: संघीय ढाँचे, सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था व शिक्षा में सामाजिक न्याय से खिलवाड़ करने वाले 'नीट' को ख़ारिज करो!

20 जून 2021 को एसपीसीएसएस (स्टेट प्लैटफ़ॉर्म फ़ॉर कॉमन स्कूल सिस्टम)-तमिल नाडु द्वारा डॉ. न्यायाधीश ए. के. राजन उच्च स्तरीय समिति के अध्यक्ष के नाम एनईईटी ('नीट' - नैशनल ऐलिजिबिलिटी कम ऐंट्रन्स टेस्ट) के असर पर व सामाजिक न्याय के उसूल तथा राज्य सरकार के अधिकारों को बरक़रार रखने के उपायों के विषय पर एक पत्र सौंपा गया। इसके साथ भारत के राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री को पेश ज्ञापन संलग्न था। मातृभाषा के माध्यम पर केंद्रित, पड़ोस-आधारित समान स्कूल व्यवस्था के निर्माण के लिए संघर्ष कर रहे संगठन के रूप में अपना परिचय देते हुए एसपीसीएसएस ने बताया कि वो 'नीट' के विषय पर कई गोष्ठियाँ व बैठकें आयोजित कर चुके हैं, संघ व तमिल नाडु की सरकारों को रपटें सौंप चुके हैं तथा अदालतों में याचिकाएँ दायर कर चुके हैं।

यहाँ हम इस पत्र के मुख्य बिंदु पेश कर रहे हैं।

'नीट' स्वास्थ्य शिक्षा व सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था दोनों पर असर डालता है। स्वास्थ्य सेवा के मौलिक अधिकार होने के उसूल के तहत तमिल नाडु सरकार का सामाजिक न्याय पर आधारित एक मज़बूत सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था खड़ा करने का इतिहास है। तमिल नाडु सरकार ने सरकारी अस्पतालों में डॉक्टरों, विशेषज्ञों व सूपर विशेषज्ञों की नियुक्तियाँ करने तथा स्नातक व परा-स्नातक स्तरों पर जज़्बे और सेवा भाव वाले विद्यार्थियों के प्रवेश को सुनिश्चित करने की नज़र से एक नीति अपनाई थी। 'नीट' की महँगी कोचिंग के चलते ये योग्य विद्यार्थी अपने ख़्वाब पूरे नहीं कर पाएँगे और सेवाएँ भी नहीं दे पाएँगे; इसके बदले डॉक्टरी में पैसा कमाने का उद्देश्य और हावी हो जाएगा। इन-सर्विस आरक्षण जैसे सामाजिक न्याय के उपायों के चलते तमिल नाडु में आज सूपर विशेषज्ञ सीटें सबसे ज़्यादा हैं। 'नीट' के लागू रहने से सरकारी कॉलेजों में परा-स्नातक विद्यार्थियों को पढ़ाई के लिए कॉरपोरेट अस्पतालों के डॉक्टरों पर निर्भर होना पड़ेगा तथा इन कॉलेजों की सूपर विशेषज्ञ सीटों में गिरावट आएगी। देर-सवेर इसका असर सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था पर पड़ेगा और लोगों को इलाज कराने में ख़ासी दिक़्क़त आएगी। प्राथमिक उपचार केंद्रों के बदले बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा संचालित निजी क्लीनिकों का व्यापार बढ़ेगा।

'नीट' को विश्व व्यापार संगठन के अधीन जनरल ऐग्रीमेंट ऑन ट्रेड इन सर्विसेज़ की शर्तों के तहत लाया गया है। दुनियाभर में लोग इन शर्तों का विरोध कर रहे हैं। भारत सरकार ने अपनी स्थिति का ख़ुलासा नहीं किया है। इन शर्तों की कड़ी में ही बड़ी-बड़ी कंपनियाँ/व्यापारी शिक्षा के धंधे से मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए कोर्सों में प्रवेश के लिए राज्य सरकारों के विविध नियमों, क़ानूनों आदि की जगह पूरे भारत में एक ही क़ानून, नियम लागू करवाना चाहते हैं।

'नीट' न ही बराबरी पर टिका है और न ही किसी शैक्षिक या स्वास्थ्य विशेषज्ञ समिति की सिफ़ारिशों पर, बल्कि यह व्यावसायिक हितों की नीतियों पर क़ब्ज़ेदारी का परिणाम है। 7 जुलाई 2007 को भारत सरकार ने

इंडियन मेडिकल कॉउंसिल ऐक्ट 1956 के अध्ययन व इस पर सिफ़ारिशों के लिए डॉक्टर रंजीत रॉय चौधरी की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समूह नियुक्त किया था। इसने 25 सितंबर 2014 को अपनी रपट सौंपी। इस रपट का संज्ञान लेते हुए स्वास्थ्य व परिवार कल्याण पर संसदीय स्थाई समिति ने 8 मार्च 2016 को अपनी 92वीं रपट संसद के दोनों सदनों में पेश की। इन दोनों समितियों ने निजी स्व-वित्त पोषित मेडिकल संस्थानों की ऊँची फ़ीस व प्रवेश के मनमाने तरीक़ों पर यह कहते हुए चिंता जताई कि इससे योग्य विद्यार्थी स्वास्थ्य पेशे से बाहर कर दिए जाते हैं। इनके द्वारा प्रस्तावित सीएमईटी (सैंट्रल मेडिकल ऐंट्रेंस टेस्ट) का मक़सद निजी संस्थानों पर नकेल लगाने का था, नाकि राज्य सरकारों द्वारा संचालित स्वास्थ्य कॉलेजों/विश्वविद्यालयों में हस्तक्षेप करने का। सर्वोच्च न्यायालय ने भी 2 मई 2016 के अपने फ़ैसले में यही चिंताएँ ज़ाहिर करते हुए संघ सरकार को इन समितियों की रपटों के आधार पर निजी संस्थानों की प्रवेश प्रक्रिया पर नकेल कसने को कहा था। डॉक्टरी को एक शालीन पेशा बताते हुए अदालत ने कहा था कि यह व्यावसायीकरण या मुनाफ़े की इजाज़त नहीं देता है, और इसलिए इन निजी संस्थानों को 'न लाभ, न हानि' के उसूल पर चलाना होगा। इन दोनों समितियों ने सरकार के 'नीट' को शुरु करने के प्रयासों पर चर्चा करते हुए किसी 'योग्यता' परीक्षा का प्रस्ताव नहीं दिया था। अखिल भारत स्तर की 'योग्यता' परीक्षा का तो सवाल ही नहीं उठा था। उन्होंने केवल सीएमईटी का प्रस्ताव दिया था। इनकी इस पेशकश में संविधान के संघीय ढाँचे का एहतराम साफ़ ज़ाहिर था कि सीएमईटी को पूरे देश में लागू करते हुए उन राज्यों में लागू नहीं किया जाएगा जो इसके बाहर रहना चाहते हैं। इन सबका उद्देश्य निजी मेडिकल कॉलेजों व डीम्ड विश्वविद्यालयों द्वारा व्यावसायिक हितों के लिए योग्यता की बलि तथा स्वास्थ्य शिक्षा के व्यावसायीकरण को रोकना था।

जबकि शिक्षा व स्वास्थ्य का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 को अनुच्छेद 14, 15, 16 तथा 41 के साथ जोड़कर पढ़ने से स्थापित होता है, इसके बदले नीति आयोग की चिंता निजी वित्तीय पूँजी को फ़ायदा पहुँचाने की थी। 7 अगस्त 2016 की अपनी रपट में नीति आयोग ने प्रस्तावित किया कि राष्ट्रीय चिकित्सा आयोग को निजी कॉलेजों की फ़ीस पर पाबंदियाँ नहीं लगानी चाहिए! बल्कि इन संस्थानों को पारदर्शिता बरतते हुए अपनी फ़ीस का खुला ऐलान करना चाहिए। आयोग ने अपने प्रस्ताव के पक्ष में तीन कारण दिए: क़ानून बेअसर रहा है [तो उसे हटाकर लुटेरों को खुल्ली छूट दे दो!], इससे निजी संस्थाएँ इस क्षेत्र में आने से कतरा रही हैं और क्षेत्र का विस्तार नहीं हो पा रहा है [जोकि सरकार की ज़िम्मेदारी वैसे भी नहीं है!] और इससे घूसखोरी पनपती है [जिसे रोकना एक 'मज़बूत' सरकार के बस का नहीं है!]। इस तरह स्वास्थ्य शिक्षा में लाभ कमाने की इच्छुक संस्थाओं को खुलकर प्रवेश करने की अनुशंसा की गई। 'नीट' से पहले जो अवैध था, उसे अब वैध कर दिया गया है। नीति आयोग द्वारा प्रस्तावित 'नीट' ने संविधान के संघीय ढाँचे को पलट कर रख दिया है। आयोग का यह प्रस्ताव कि निजी संस्थान 60 प्रतिशत सीटों पर मनमर्ज़ी से फ़ीस लेने को आज़ाद रहें, राज्यों द्वारा जनता के हित में फ़ीस व व्यावसायीकरण पर लगाम लगाने के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप है।

डॉक्टर अंबेडकर ने 25 नवंबर 1949 को संविधान सभा में दिए अपने वक्तव्य में केंद्र व राज्यों के बीच सत्ता तथा अधिकार क्षेत्रों के बँटवारे की बात करते हुए कहा था कि राज्यों को केंद्र के अधीन नहीं रखा गया है और केंद्र अपनी मर्ज़ी से इन सीमाओं को बदल नहीं सकता है। 2016 में पाँच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने भी अपने ऊपर-वर्णित फ़ैसले में राज्य सरकारों द्वारा राज्य-स्तरीय शिक्षा संस्थानों में प्रवेश तथा फ़ीस

संबंधी नियम-क़ानून बनाने के अधिकार को संरक्षित किया था। 'नीट' के लागू होने की स्थिति में संघ व राज्य सरकारों के बीच के मुद्दों को अदालत ने अनुच्छेद 254 के तहत सुलझाने के निर्देश दिए थे।

तमिल नाडु सामाजिक न्याय के उपायों को लाने व लागू करने में अग्रणी रहा है। शिक्षा में आरक्षण वाला प्रथम संविधान संशोधन तमिल नाडु में पेरियार के नेतृत्व में चले जन-संघर्ष की देन था। इस इतिहास में पेशों की शिक्षा देने वाले कॉलेजों की प्रवेश या योग्यता परीक्षा पर निषेध की नीति शामिल है। भूतपूर्व उप-कुलपति डॉ. एम आनंदकृष्णन की अध्यक्षता में तमिल नाडु सरकार द्वारा गठित एक विशेषज्ञ समिति की सिफ़ारिश थी कि सत्र 2007-08 से समान प्रवेश परीक्षा रद्द की जाए। इस पर क़दम उठाते हुए एक विधेयक लाया गया। तमिल नाडु के 2006 के इस विधेयक पर मद्रास उच्च न्यायालय ने 27 अप्रैल 2007 को फ़ैसला सुनाते हुए इसे जायज़ क़रार दिया। इस फ़ैसले में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के दफ़्तरी निर्देश को दर्ज किया गया जिसमें माना गया था कि तमिल नाडु का यह क़ानून संघ सूची की प्रविष्टि 66 के विरोध में नहीं है क्योंकि यह विषय समवर्ती सूची में आता है। फ़ैसले में 25 जनवरी 2007 के स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय के एक पत्र को भी दर्ज किया गया जिसमें यह साफ लिखा था कि तमिल नाडु का उक्त विधेयक किसी भी तरह केंद्रीय अधिनियम या नीति के ख़िलाफ़ नहीं है। अदालत ने इस विधेयक को वैध ठहराते हुए कहा कि ये योग्यता के विरुद्ध नहीं है और बराबरी के उसूल की भी हिफ़ाज़त करता है। इस फ़ैसले ने यह पहचाना कि समान प्रवेश परीक्षा किसके फ़ायदे में है - अभिजात वर्गों, ऊँची फ़ीस वाले कोचिंग केंद्रों, बाज़ारवादी स्कूलों - और किसके नुक़सान में - सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़ों, कामगार, ग़रीब व 'निरक्षर' अभिभावकों के बच्चों। अदालत ने लोकतंत्र के तीन स्तंभ चिन्हित किए - जियो और जीने दो; योग्यता/कार्यकुशलता का पिछड़े वर्गों के विद्यार्थियों से तालमेल बिठाते हुए विशेष क्षेत्रों की सीटों का बँटवारा किया जाए; तमिल नाडु के लोगों की 'नीट' को ख़ारिज करने की इच्छा। वर्ष 2011 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस फ़ैसले पर मुहर लगाई।

इन तथ्यों से साबित होता है कि तमिल नाडु की नीति जिसके तहत उच्चतर-माध्यमिक कक्षा के अंकों के आधार पर मेडिकल कोर्सों में प्रवेश मिलता था, वैध है और 'नीट' इस स्थापित क़ानून को पलटने की कोशिश है कि राज्य सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के विकास के लिए विशेष उपाय करने को स्वतंत्र हैं। 'नीट' के चलते: महँगी फ़ीस वाले कोचिंग केंद्रों का बाज़ार बढ़ रहा है; स्कूली शिक्षा के आंतरिक महत्व में गिरावट आ रही है; स्कूलों में सर्वांगीण गतिविधियों की अनदेखी हो रही है; विद्यार्थियों पर अतिरिक्त मानसिक तनाव बढ़ रहा है; निजी प्रकाशकों की पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु और सिकुड़ रही है; निजी स्कूल छोटी कक्षाओं से ही बच्चों को व्यावसायिक कोचिंग की तरफ़ धकेल रहे हैं आदि। 'योग्यता' के बाज़ारवादी मिथक के नाम पर 'नीट' वंचितों को ही और बेदख़ल करता है।

विशेषज्ञ समिति ने अपने अध्ययन में और संसदीय समिति ने तमिल नाडु के अपने दौरों व सार्वजनिक सुनवाइयों तक में सरकारी स्वास्थ्य कॉलेजों में प्रवेश को लेकर और इनसे निकलने वाले विद्यार्थियों की गुणवत्ता को लेकर कोई शिकायत नहीं पाई थी। इन दोनों समितियों ने समान प्रवेश परीक्षा (सीईटी) को केवल निजी कॉलेजों की फ़ीस व प्रवेश प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिए प्रस्तावित किया था तथा 'योग्यता' की शब्दावली दोनों की सिफ़ारिशों से बाहर थी। इसके बदले 'नीट' का अंजाम ये हुआ कि कम अंक वाला विद्यार्थी निजी संस्थान में जगह पा लेता है, क्योंकि अधिक अंक वाले विद्यार्थी को ऊँची फ़ीस की

वजह से सीट छोड़नी पड़ती है। इस हक़ीक़त से तथाकथित 'योग्यता' का तर्क धाराशायी हो जाता है। इस तरह 'नीट' ने इन समितियों के दोनों उद्देश्यों - व्यावसायीकरण रोकना और फ़ीस/प्रवेश नियंत्रित करना - को असल में तो पलट ही दिया है। आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों के व सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थी 'नीट' की तीन बार की कोचिंग (इसमें तीन अवसर मिलते हैं) और इसके पहले की 2-3 साल की महँगी तैयारी का मुक़ाबला आख़िर कैसे कर सकते हैं? 'नीट' को अब 'आयुष', नर्सिंग तथा जीव-विज्ञान कोर्सों में प्रवेश के लिए बढ़ाया जा रहा है। कमज़ोर वर्गों के विद्यार्थियों के लिए इसके अंजाम घातक होंगे। यह अतार्किक, अवैज्ञानिक, असंवैधानिक तथा बच्चों के हितों के ख़िलाफ़ है।

1951 के पहले संविधान संशोधन विधेयक के उद्देश्य व कारण वाले बयान में राज्य के नीति निदेशक तत्व (अनुच्छेद 46) पर ज़ोर दिया गया था तथा अनुच्छेद 15 (3) को मज़बूत करके राज्यों द्वारा पिछड़े वर्गों के विकास के लिए बनाए जा रहे विशेष उपायों की हिफ़ाज़त करने की वकालत की गई थी। संसदीय लोकतंत्र में अंतिम सत्ता लोगों के पास होती है। 2019 के लोकसभा व 2021 के विधानसभा चुनावों में तमिल नाडु के लोगों ने 'नीट' को ख़ारिज करने वाले घोषणापत्र के पक्ष में मत डाला है। लोगों के इस जनादेश का सम्मान करने में ही लोकतंत्र की कामयाबी है।

सार्वजनिक मेडिकल संस्थान खोलने में सरकार द्वारा वित्तीय असमर्थता जताना और निजी क्षेत्र को मेडिकल कॉलेज खोलने में मुनाफ़ा कमाने की पूरी छूट देना संविधान की आत्मा तथा प्रावधानों के विरुद्ध होने के नाते स्वीकार्य नहीं है। तमिल नाडु राज्य की विधानसभा और भारतीय संसद को 'नीट' की नाइंसाफ़ी को ख़त्म करने तथा संविधान के मौलिक तत्वों, लोकतंत्र व संघीय ढाँचे, को बरक़रार रखने के लिए आगे आना होगा।

*****

कोविड ने कॉमरेड शिवराम को हमसे छीन लिया

मजदूर आंदोलन के जुझारू नेता, क्रांतिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन और अभाशिअमं की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सक्रिय साथी कॉमरेड शिवराम कोविड से लगातार संघर्ष के बावजूद हार गए. बीती 28 मई की देर रात भुवनेश्वर के अस्पताल में उन्होंने अंतिम साँस ली. वे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के साथ संबंध रखते हुए अभाशिअमं से भी जुड़े रहे. उनका जाना घोर मज़दूर और जनविरोधी दौर में क्रांतिकारी आंदोलन के लिये बड़ी क्षति है. दुःख और अवसाद को संकल्प और ताकत में बदलने के ज़ज्बे के साथ हम उन्हें गहन हार्दिक श्रद्धांजलि देते हैं और क्रांतिकारी लाल सलाम पेश करते हैं.

*****

प्रो. दविन्दर कौर उप्पल नहीं रहीं लेकिन भोपाल पर अपनी अमिट छाप छोड़ गईं

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के संचार विभाग की पूर्व विभागाध्यक्ष 75 वर्षीय प्रो. दविन्दर कौर उप्पल का कोविड-19 की वजह से 3 मई 2021 की रात को देहांत हो गया। इससे भोपाल के सामाजिक जीवन में जो खालीपन आया है उसकी भरपाई शायद ही हो पाएगी। शहर की विभिन्न सामाजिक सस्थाओं व जनपक्षी संगठनों व आंदोलनों से उनका बहुआयामी जुड़ाव और हिम्मत देने में जबरदस्त योगदान था।

ज़िला अनूपपुर, मध्य प्रदेश के कस्बे कोतमा के सिख परिवार में जन्मी दविंदर जी ने तीन दशक पहले जब पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय में पढ़ाना शुरू किया तभी से उनके विद्यार्थियों के जीवन की दिशा बदलने लग गई। विद्यार्थियों के लिए पत्रकारिता महज कमाऊ पेशा न होकर एक सामाजिक व राष्ट्रीय मिशन बन गया, देश की नियति बदलने के जज़्बे व दृष्टि के साथ। सन् 1979-80 में सागर विश्वविद्यालय की प्रो. उप्पल हमारे काम को समझने के लिए अचानक ज़िला होशंगाबाद के पूर्वी सिरे पर स्थापित 'किशोर भारती' संस्था पहुंच गईं। दिसंबर 3, 1984 को भोपाल गैस कांड के संदर्भ में नवगठित 'भारत जन विज्ञान जत्था' की ओर से जहरीली गैस से हुई बीमारियों के वैज्ञानिक आधार को समझने के लिए भोपाल में आयोजित राष्ट्र-स्तरीय सम्मेलन में दविंदर जी ने सागर विश्वविद्यालय के अपने फ़ैकल्टी सहयोगियों व विद्यार्थियों के साथ सक्रिय हिस्सेदारी की और बहुराष्ट्रीय कंपनी यूनियन कार्बाइड के खिलाफ़ व्यापक प्रचार-प्रसार किया। उसी प्रक्रिया के अगले चरण बतौर गठित 'भारत ज्ञान विज्ञान समिति' के साथ आखिरी सांस तक जुड़ी रहीं।

सन् 2011 में भोपाल में 'शहीद शंकर गुहा नियोगी पुस्तकालय व सांस्कृतिक केंद्र' स्थापित हुआ तो दविंदर जी उसके सलाहकार मंडल की अध्यक्ष बनीं और अपने निजी पुस्तकालय से सैंकड़ों अमूल्य पुस्तकें भेंट कीं।

सन् 2014 में 'अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच' की ओर से समान स्कूल व्यवस्था बनाने और सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था को पुख़्ता करने के लिए 'अखिल भारत शिक्षा संघर्ष यात्रा' का आयोजन किया गया जिसका समापन भोपाल में दिसंबर 2014 में हुआ। दविंदर जी शिक्षा संघर्ष यात्रा के भोपाल में स्वागत हेतु कई स्कूलों व कॉलेजों के शिक्षक समुदाय और विद्यार्थियों के बीच गईं और एक लाख रुपया इकट्ठा किया। उसी दौर में भोपाल गैस कांड की 30वीं बरसी मनाई गई। इसी संदर्भ में 'किशोर भारती' संस्था की ओर से सुप्रीम कोर्ट के दस्तावेजों पर आधारित 'रुका हुआ फ़ैसला, ठहरा हुआ दर्द और उभरता आक्रोश' शीर्षक की पुस्तक प्रकाशित की गई जिसकी भूमिका दविंदर जी ने लिखी। उस भूमिका की आखिरी पंक्तियां यहां उद्धृत की जा रही हैं -

"हम आज तेजी से विदेशी कंपनियों के स्वागत के लिए अपने देश के आंगन में रंगोली बना रहे हैं। आज हर राज्य का मुख्यमंत्री विदेशी कंपनियों के सी.ई.ओ. को फूलमाला पहनाने के लिए आतुर है। क्या गारंटी है कि अब और 'भोपाल' नहीं होंगे? . . . गरीब आदिवासियों और दलितों की ज़मीनों पर ही परमाणु ऊर्जा के कारखाने और रासायनिक उद्योग शुरू किए जाएंगे; अपनी ज़मीनों से ही निष्कासित ज़िंदगी जीने के लिए ये इन्हीं कारखानों में छोटे-मोटे काम करेंगे व फिर इनकी कच्ची-गंदी बस्तियां बनेंगी और फिर किसी रात को कोई हूटर बज उठेगा, यूनियन कार्बाइड के हूटर की तरह; फिर गरीब ही मरेंगे। इसलिए आज ही प्रश्न उठाने होंगे, ढेरों प्रश्न . . .। भोपाल गैस त्रासदी की कहानी को . . . देश के कोने-कोने में ले जाकर सुनाना होगा। भविष्य के 'भोपालों' को रोकने की तैयारी करनी होगी!" उपरोक्त संवेदनशील, चुनौतीपूर्ण व जनपक्षी पंक्तियों को आज याद करने और उन पर अमल करने का संकल्प लेने से बेहतर दिवंगत प्रो. दविन्दर कौर उप्पल को हमारी और से कोई श्रद्धांजलि नहीं हो सकती!

*****

प्रो. लाल बहादुर वर्मा ने अंतिम साँस ली

प्रसिद्ध इतिहासकार, जनपक्षधर बुद्धिजीवी और सामाजिक-राजनैतिक कार्यकर्ता प्रो. लाल बहादुर वर्मा हमारे बीच नहीं रहे. 17 मई, 2021 को 84 वर्ष की आयु में देहरादून में उन्होंने अंतिम साँस ली. वे कोरोना से पीड़ित थे और उन्हें उपयुक्त इलाज नहीं मिल सका. इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अवकाशप्राप्त प्रो. लाल बहादुर वर्मा का पूरा जीवन पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध जारी संघर्षों को समर्पित रहा. वे अपनी अंतिम साँस तक समानता पर आधारित नए समाज का सपना दिल में संजोये रहे. अभाशिअमं उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि पेश करता है. इतिहास बोध जैसी क्रांतिकारी-वैचारिक पत्रिका का वर्षों संपादन करनेवाले प्रो. लाल बहादुर वर्मा ने इतिहास पर कई किताबें लिखीं और कई महत्वपूर्ण किताबों का अनुवाद भी किया और साथ ही वे रंगकर्म से भी जुड़े रहे. इतिहास बोध से लैस ऐसे आजीवन सक्रिय, समर्पित साथी को आखिरी सलाम!

*****

फादर स्टेन स्वामी नहीं रहे

फादर स्टेन स्वामी का निधन एन आई ए की गिरफ्त में 5 जुलाई , 2021 को हो गया. उन्होंने पूरी जिंदगी वंचितों, खासकर आदिवासियों की आवाज़ बनने में लगा दी. बेल्जियम में आकर्षक प्रोग्राम में उनका सेलेक्शन हो गया था, लेकिन इसको छोड़कर उन्होंने आदिवासियों के बीच काम को ज़्यादा तरजीह दी. उनकी मौत निश्चित ही एक हत्या है- मानवाधिकार की, भारतीय न्याय व्यवस्था की, भारतीय संविधान की आत्मा की. स्टेन स्वामी को आखिरी सलाम!

*****

डॉ. रमेश उपाध्याय

यह एक विडंबना ही है कि भोपाल के चर्चित यूनियन कार्बाइड गैस त्रासदी को आधार बना कर सरकारी व्यवस्था, लापरवाही और मानव जीवन को आंकड़ों में तब्दील किए जाने पर लिखी गई बेहद मार्मिक कहानी 'त्रासदी... माई फुट' के लेखक डॉ. रमेश उपाध्याय का जीवन भी महामारी की ही भेंट चढ़ गया. कोरोना एक कहर बनकर आया है. कई साहित्यकार, कलाकार एक-एक कर साथ छोड़ रहे हैं. राजधानी में रह रहे कथाकार डॉ. रमेश उपाध्याय भी इसकी भेंट चढ़ गए. उनका जन्म उत्तर प्रदेश के एटा जिले के बढ़ारी बैस में 1 मार्च, 1942 को हुआ था. रमेश उपाध्याय के साहित्यिक जीवन का आरंभ 60 के दशक में अजमेर से प्रकाशित पत्रिका 'लहर' से हुआ. इस पत्रिका के लिए वे कंपोजीटर का काम करते थे. यहीं से उनकी साहित्य में रुचि बढ़ी और जल्दी ही वे देश भर में प्रकाशित होने लगे. काम के साथ-साथ अध्ययन करते हुए उन्होंने राजकीय महाविद्यालय, अजमेर से प्रथम श्रेणी में हिंदी में स्नातकोत्तर की उपाधि हासिल की. पीएचडी करने के बाद उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज में तीन दशकों तक अध्यापन किया. 1981 में जनवादी लेखक संघ की स्थापना में भी डॉ. उपाध्याय ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की. उन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, आलोचना, साक्षात्कार, रिपोर्ताज, सभी विधाओं में हाथ आजमाया था. अभाशिअमं उनके प्रति गहरी संवेदना का इज़हार करता है.

*****

सूरजपाल चौहान नहीं रहे

पिछले दिनों वरिष्ठ हिंदी साहित्यकार सूरजपाल चौहान नहीं रहे। इनका जन्म अलीगढ़ उत्तर प्रदेश में 20 अप्रैल 1955 में हुआ। सूरजपाल चौहान शुरुआती दिनों में रूढ़िवादी संगठनों से जुड़े रहे और उनके मंचों से हिन्दुवादी कविताएं कहते रहे। लेकिन ओमप्रकाश वाल्मीकि के संपर्क में आने के बाद वह अंबेडकरवादी हो गए। 'प्रयास', 'क्यों विश्वास करूं', 'कब होगी यह भोर' इनके काव्य संग्रह हैं। उन्होंने बच्चों के लिए भी कवितायें लिखीं जो कि 'बच्चे सच्चे किस्से' और 'बाल मधुर गीत' संग्रह में छपीं। अपनी आत्मकथा "तिरस्कृत" में इन्होंने लिखा कि किस प्रकार ये अपनी मां के साथ सवर्णों के यहाँ काम करने जाया करते थे और उनका शोषण झेलते हुए बड़े हुए। अपने समय के कई अन्य साहित्यकारों की तरह जिन्होंने भारतीय समाज के जातिगत दंश के अनुभवों को अपनी रचनाओं में दर्ज करके दलित चेतना, अस्मिता व विमर्श को शक्ल दी, सूरजपाल चौहान भी एक राज्य वित्त-पोषित सार्वजनिक संस्था में कार्यरत रहे। सूरजपाल चौहान की कविताओं और कहानियों ने दलित समाज को जगाने और झकझोरने का काम किय। इन्होंने न केवल दलित प्रश्नों को साहित्य के माध्यम से उठाया बल्कि दलित समाज की आंतरिक चुनौतियों को भी सामने लाने का काम किया। आज दलित पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों में जिस आत्मविश्वास, राजनैतिक चेतना और सामाजिक विश्लेषण को हम पाते हैं, वो बेशक सूरजपाल चौहान सरीखे साहित्यकारों की लेखनी की भी देन है।

आपको आखिरी सलाम साथी!

*****

हम उन्हें अच्छे नहीं लगते

सुरेश चंद

इस शस्य श्यामला भारत भूमि की
हर चीज उन्हें अच्छी लगती है
नदी, झरने, ताल-तलैया, सब कुछ....

पीले-पीले सरसों हों
या बौर से लदी अमरायी
या फिर
हमारे खून पसीने से लहलहाती फसल
सब कुछ उन्हें बहुत भाती है

हमारे श्रम से बनी
ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें
उन्हें बहुत सुकून देती हैं
पीपल का वृक्ष हो या
तुलसी का पौधा
या फिर दूध पीती पाषाण मूर्तियाँ
इन सबकी उपासना उन्हें अच्छी लगती है
पर हम उन्हें अच्छे नहीं लगते
सिनेमा हाल में एक ही कतार में बैठकर
हम फ़िल्में देखते हैं जरूर
पर चारपाई पर बैठकर
हमारा पढ़ना-लिखना उन्हें अपमानजनक लगता है
हम भी हैं इसी वसुंधरा की उपज
यह देश हमारा भी है जितना कि उनका है

परन्तु खिलखिलाते हुए हमारे बच्चे
उन्हें अच्छे नहीं लगते

खेतों में काम करती हुई
हमारी बहू-बेटियां
उनकी पिशाच वासनाओं का शिकार होती हैं
और हमारी सरकारी नौकरी
उनकी आँखों की किरकिरी है

हम घर में हों या बाहर
बस से यात्रा कर रहे हों
या फिर ट्रेन से
किसी संगीत सभा में हों
या स्कूल में
वे जानना चाहते हैं सबसे पहले
हमारी जाति
क्योंकि सिर्फ उनको ही पता है
हमारी नीची जाति होने का रहस्य

वे चाहते हैं कि
हम उनके सामने झुक के चलें
झुक कर रहें
झुक कर जियें
एक आज्ञा पालक गुलाम की तरह

(सुरेश चंद दलित साहित्य और संस्कृति के अध्यक्ष थे. हाल ही में कोरोना से उनकी मृत्यु हुई है. अभाशिअमं उनके प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करता है.)

स्वामी, प्रकाशक व मुद्रक : श्री डोन्काडा रमेश पटनायक (संगठन सचिव, अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच),
11-4-169/1/ए, फ़्लैट नं० 306, प्लेज़ेंट अपार्टमेंट्स, रेड हिल्स, लकड़ी का पुल, ख़ैराताबाद, हैदराबाद 500004
फ़ोन : (040) 23305266, मो० : 0944980396, ईमेल : aifrte.secretariat@gmail.com
डेक्कन प्रेस, 1-9-1126/बी/ए, आज़माबाद, हैदराबाद 500020 से मुद्रित

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच (अभाशिअमं) के न्यूज़लेटर 'तालीम की लड़ाई' की सामग्री का ग़ैर-व्यावसायिक सार्वजनिक इस्तेमाल किया जा सकता है, बशर्ते कि इसके स्रोत का संदर्भ दिया जाए।